RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17 प्रकाशन तिथि 29 दिसम्बर 2016

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका जनवरी 2017

मूल्य ₹ 50

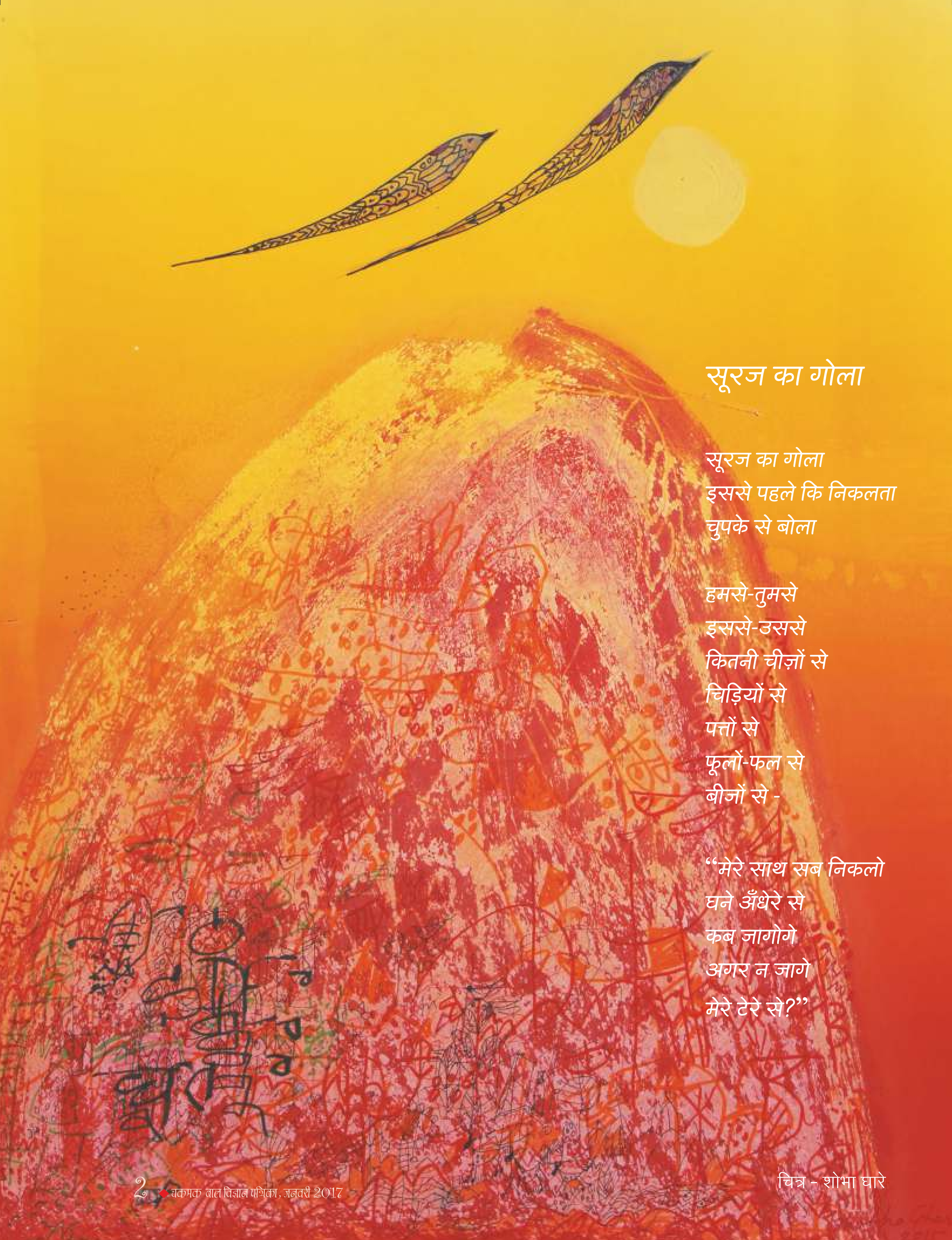

सूरज का गोला

सूरज का गोला
इससे पहले कि निकलता
चुपके से बोला

हमसे-तुमसे
इससे-उससे
कितनी चीज़ों से
चिड़ियों से
पत्तों से
फूलों-फल से
बीजों से -

"मेरे साथ सब निकलो
घने अँधेरे से
कब जागोगे
अगर न जागे
मेरे टेरे से?"

चित्र - शोभा घारे

बाल विज्ञान पत्रिका

अंक 364 जनवरी 2017

इस अंक में

2 सूरज का गोला - भवानी प्रसाद मिश्र
4 कहाँ से आते हैं जूते? - अनुपम मिश्र
6 अगर मगर - गुलज़ार
8 रामसहाय - स्वयंप्रकाश
10 हमें पानी में खूब भिगोकर खुद...- दिलीप चिंचालकर
14 कैनवस के जूते - निखिल सचान
19 मेरा पन्ना
20 दोस्तों के नाम एक चिट्ठी - फिओना एप्पल
22 महँगाई - शरद जोशी
24 बाघ नबीबख्श
28 मेरा पन्ना
29 बोली रंगोली - गुलज़ार तथा बच्चे
33 हाजी नाजी - स्वयंप्रकाश
34 हेज़ल - ऋषव हलदर
36 कन्फेशन बॉक्स - प्रियंवद
41 मेरा पन्ना
42 जानवरों का सोना - विनता विश्वनाथन
45 मेरा पन्ना
46 चित्र पहेली
47 ये धरती कितनी सुन्दर है न! - रस्किन बॉण्ड
48 पालतू होना - अजीत चौधरी

अनुपम मिश्र अपने काम के लिए जितने जाने जाते हैं उतने ही अपनी सादा जीवन शैली के लिए भी।

उनकी भाषा की सादगी, सहजता तथा सरसता के उदाहरण दिए जाते हैं। उन्हें अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे समझे जानेवाले हमारे देहाती समाज की समझबूझ पर गहरा यकीन था। उन्होंने पानी को सहेजने के पारम्परिक और चमत्कृत कर देने वाले तरीकों को अपने लेखन का प्रमुख विषय बनाया। जल, नीर की तरह वे पानी के पर्याय शब्द हो गए थे।

चकमक से उनका आत्मीय रिश्ता रहा है। उन्होंने चकमक के लिए पत्र, लेख लिखे। सुझाए। उनका एक लेख इसी अंक में तुम पढ़ोगे। उनके मित्र दिलीप चिंचालकर की एक स्मृति भी। अनुपम जी, आपकी स्मृति हमें हमेशा प्रेरित करती रहेगी ...

● चकमक

आवरण चित्र
आर्या ए परमार,
चौथी, डीपीएस पुणे

हाशिए के चित्र
नए वर्ष की नई सुबह

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव
ब्रजेश सिंह

तक्षशिला एजुकेशनल सोसाइटी के वित्तीय सहयोग से विकसित

एक प्रति :	50.00
वार्षिक :	500.00
तीन साल :	1350.00
आजीवन :	6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

कहाँ से आते हैं जूते?

अनुपम मिश्र

कह सकते हो यह भी कोई सवाल हुआ? दुकान से आते हैं जूते। पर सवाल यह है कि दुकान में कहाँ से आते हैं?

खैर, अमरीका की एक संस्था नॉर्थवेस्ट वॉच को यह सवाल बहुत भाया। इसलिए उसने जानना चाहा कि सामान्य अमरीकी परिवारों में इस्तेमाल होने वाले जूते कहाँ से आते हैं। इस छोटी-सी जिज्ञासा ने उस संस्था को लगभग पूरी दुनिया का चक्कर लगवा दिया। कैसे.....

चलो, शुरू करते हैं जूते की यात्रा...

मान लो किसी जूते पर अमरीका की सबसे प्रसिद्ध जूता कम्पनी का ठप्पा लगा है। पर यह जूता इसने बनाया नहीं है। इस कम्पनी ने एक बिलकुल अनजानी कम्पनी से करार किया हुआ है। इस अप्रसिद्ध कम्पनी को खोज निकालने में थोड़ा समय लगा। मेहनत बहुत करनी पड़ी क्योंकि दूरी बहुत थी – वे दक्षिण कोरिया जा पहुँचे। इस लम्बी, थकान भरी यात्रा से भी वे खुश ही थे कि चलो अब जूते की कहानी पूरी हुई। पर नहीं।

यह तो शुरुआत थी। दक्षिण कोरिया की यह कम्पनी भी इस जूते को खुद नहीं बनाती है। वह इसे इण्डोनेशिया के जकार्ता शहर की एक गुमनाम कम्पनी से बनवाती है। यह कम्पनी वहाँ के एक औद्योगिक हिस्से में है। इस जगह का नाम है – तांगेरैंग।

मज़ेदार बात यह है कि सारा काम यहाँ भी नहीं होता है। यहाँ की कम्पनी जूते के उच्च तकनीकी डिज़ाइन को अपने कम्प्यूटरों से ताइवान देश की एक और गुमनाम कम्पनी को भेजती है।

इस डिज़ाइन के तीन भाग हैं। पहला है, ऊपरी हिस्सा जो पैर के पँजे को ढँकता है। दूसरा भाग है, पैर के तलुए से चिपककर रहने वाला जूते का सुफतला। तीसरा है, सड़क या पगडण्डी पर चलने वाला निचला तला। अब ये सब कोई मामूली जूते के अंग थोड़े ही हैं। इसलिए इन तीन प्रमुख अंगों के बीस हिस्से और हैं।

इस जूते का मुख्य हिस्सा है – चमड़ा। यह गाय का चमड़ा है। इन गायों को इसी काम के लिए विशेष रूप से अमरीका के टेक्सास में पाला जाता है। यहीं इन्हें आधुनिक तकनीक से बने कत्लखानों में मशीनों से मारा जाता है। फिर बड़ी बारीकी से इनका चमड़ा निकाला जाता है। काटे जाते समय की नरमी खाल में बनाए रखने के लिए उसे न जाने कितनी रासायनिक क्रियाओं से निकाला जाता है। फिर उसे नमक के पानी में उपचारित किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में चमड़े का एक टुकड़ा कोई 750 किस्म के रसायनों से गुज़रता है।

इस तरह तैयार यह चमड़ा बड़ी-बड़ी मालगाड़ियों में लदकर अमरीका के लॉस एंजलीस भेजा जाता है। इस शोधित चमड़े

चित्र : दिलीप चिंचालकर

की आगे की यात्रा जल मार्ग से होती है। पानी के जहाज़ों से चमड़े के ये भीमकाय गट्ठर दक्षिण कोरिया देश के पुसान नाम की जगह तक पहुँचते हैं। यहाँ इनकी और बेहतर सफाई होती है।

अमरीका में पर्यावरण को लेकर बड़े सख्त नियम हैं। प्रदूषित पानी को साफ किए बगैर नदी, नालों में नहीं छोड़ा जा सकता है। वहाँ हवा-पानी को साफ बनाए रखने के पर्यावरण-मानक तगड़े हैं। कोई चूक हो जाए तो भारी मुआवज़ा चुकाना पड़ता है। यह काम करने वालों को भारी मेहनताना भी देना पड़ता है। और फिर चमड़े से जुड़े होने के कारण सभी समाजों में इन्हें थोड़ी टेढ़ी और नीची निगाह से देखा जाता है। इन सब परेशानियों से बचने का अमरीकियों को एक तरीका नज़र आया। और वह यह कि अपनी सारी मुसीबतें, गन्दगी एशिया के किसी देश के आँगन में फेंक दो। पानी के जहाज़ का भाड़ा चुकाने के बाद भी यह सब अमरीका में ही करने से सस्ता बैठता है। जूते पर मुनाफा बढ़ गया सो अलग।

चमड़े की कमाई-रंगाई पुसान की फैक्टरियों में होती है। इसके लिए हरेक टुकड़ा 20 चरणों की बेहद खतरनाक रासायनिक क्रियाओं से गुज़ारा जाता है। इस दौरान चमड़े की सारी गन्दगी, कचरा, बाल, ऊपरी परत – सब अन्तिम रूप में अलग हो जाते हैं। यह सब गन्दगी फैक्टरी के पड़ोस में बह रही नाकटोंग नदी में छोड़ दी जाती है। अब हल्का, बेहद कीमती, शुद्ध चमड़ा हवाई जहाज़ में लदकर जकार्ता पहुँचता है।

चमड़े को यहीं छोड़कर पहले जूते में लगने वाले तले को देखते हैं। बीच के तले में फोम का उपयोग होता है। यह खूब हल्का, खूब मज़बूत फोम गर्मी-सर्दी से बचाता है। इसे बनाने में जो पदार्थ लगते हैं उनमें से एक सउदी अरब से निकलने वाले पैट्रोल से बनता है।

अब बारी है बाहरी तले की। इसे स्टाइरीन ब्यूटाडाइन रबर से बनाया जाता है। इसका कुछ भाग सउदी अरब से निकले पैट्रोल से बनता है तो कुछ ताइवान की कोयला खदानों से निकली बेंजीन से। बेंजीन निकालने का कारखाना ताइवान के परमाणु बिजलीघर से मिलने वाली ऊर्जा से चलता है।

जूते का बाहरी तला भी बन गया। अब इसे अलग-अलग आकार-प्रकार के जूतों के हिसाब से डाई से काट-काटकर जूता-जोड़ी बनाना बाकी है। इन्हें बेहद दबाव और गर्मी देने वाले साँचों में ढालकर, काटकर अब तक बन चुके आधे जूते में चिपका दिया जाता है।

(शेष भाग पेज 34 पर)

अगर मगर

चित्र : अतनु राय

1. यदि किताबें न होतीं तो क्या होता?
- खुशप्रीत कौर, छठी, रा. मा. वि. धर्मपुरा, सिरसा हरियाणा
- मास्टर तो तब भी होता। स्कूल तो जाना ही पड़ता।

2. अगर दुनिया चपटी होती तो?
- आदित्य जैन, चौथी, डीपीएस पुणे
- तो आप गोल होते।

3. पेड़-पौधे क्यों नहीं चलते हैं?
- खिरोद यादव, सातवीं, शा.उ.प्रा.शाला, बोईरमल, महासमुन्द (छत्तीसगढ़)
- पेड़ों के गर गाँव होते
जाकर सब जंगल में रहते
इन्सान के हाथों कटने से क्या, तब बच जाते?

4. सपने क्यों आते हैं?
- राजेश, आठवीं, पूर्व मा. विद्यालय गर्गन पूरवा, अतर्रा, बाँदा (उ.प्र.)
- नींद में सोचते रहने से।

5. आप सिर्फ सफेद रंग के वस्त्र क्यों पहनते हैं?
- लक्ष्य सिंह, चौथी, डीपीएस पटना
- इसमें दाग लगे तो फौरन नज़र आ जाता है।

6. हम समय को रोक क्यों नहीं सकते?
- रोहित बिस्वास, ग्यारहवीं, केन्द्रीय विद्यालय क्र.1, कांचरापाड़ा, पश्चिम बंगाल
- उसके ब्रेक नहीं है।

7. उल्लू रात में क्यों जगा रहता है?
- मो. नसीम, चौथी, आदर्श हिन्दी हाई स्कूल, कोलकाता
- मैं तो सो जाता हूँ। किसी दिन जगा रहा तो उससे पूछूँगा।

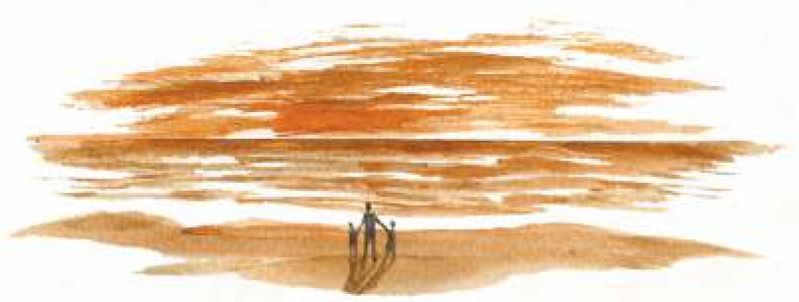

8. हम हवा को क्यों नहीं पकड़ पाते?
- रज़िया बानो, तीसरी, अंक इंडिया, नोएडा
- बादबानों में तो पकड़ी जाती है।

9. आपको हमारी कहानी और प्रश्न पढ़ने में कितना समय लगता है और आप इतना समय कैसे निकाल पाते हैं?
- सुनिता, पाँचवीं, अंक इंडिया, नोएडा।
- हर दिन चौबीस घण्टे बहुत होते हैं।

10. मछली पानी के बिना क्यों नहीं रह सकती?
- विजय, तीसरी, अंक इंडिया, नोएडा।
- पानी के बगैर तो हम भी नहीं रह सकते, विजय।

11. बन्दर की पूँछ इतनी लम्बी क्यों होती है?
- मो. जमील अंसारी, चौथी, आदर्श हिन्दी हाई स्कूल, कोलकाता
- डाली से लटकने के लिए।

12. चूहों के बच्चों की आँखें बन्द क्यों रहती हैं?
- अभिनव तिवारी, चौथी, ज्ञान सागर एकेडमी, देवास (म.प्र.)
- दूध पीते सभी बच्चों की आँखें बन्द रहती हैं, अभिनव। जब रोते हैं तब भी और जब सोते हैं तब भी।

13. आग पानी से ही क्यों बुझती है?
- श्रद्धा बावसकर, चौथी, देवास (म.प्र.)
- ये तो सच नहीं है, आग कई तरह से बुझाई जाती है। टीचर से पूछो।

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयंप्रकाश

हमारी क्लास में एक बेहद दुबला और लम्बा लड़का था। उसका नाम कमलाकर पण्डित था। वह पढ़ने में बहुत तेज़ था। उसकी खास बात यह थी कि जब भी कोई कुछ खा रहा होता तो वह जाने कहाँ से पहुँच जाता और बगैर खानेवाले से कुछ पूछे उसके दोने, ठोंगे या कागज़ पर झपट्टा मारकर एक मुट्ठ भर लेता था। और जल्दी से मुँह में ठूँस लेता था। उससे लोग डरने लगे थे। कुछ खाते होते तो चारों तरफ नज़रें दौड़ाकर देखते जाते कि कहीं पण्डित तो नहीं आ रहा! और पण्डित दिख जाए तो जल्दी से कहीं छिप जाने, भाग जाने या खत्म कर लेने की कोशिश करने लगते।

जो सवाल क्लास में किसी को नहीं आता, वह पण्डित को ज़रूर आता था। लेकिन उससे कोई पूछे तो वह मुफ्त में नहीं बताता था, इसके बदले कुछ खिलाने का वायदा ले लेता था। हम लोग समझ नहीं पाते थे कि ये कैसा लड़का है जिसकी भूख कभी खत्म ही नहीं होती! क्या इसके घरवाले इसे खाने को कुछ नहीं देते?

एक बार पण्डित को छात्रवृत्ति मिल गई। हर महीने के पूरे सात रुपए जो कि बड़ी रकम होती थी। हमने पण्डित से कहा ज़रूर कि पार्टी दे, लेकिन हमें मालूम था कि पण्डित से पार्टी लेना दिन में सपने देखने जैसा है।

लेकिन उसी दिन एक और घटना हो गई।

पण्डित बालकिशन के साथ उसकी साइकिल पर पीछे बैठे कहीं जा रहा था। आगे कुछ दूरी पर चौराहा था जहाँ से उन्हें दाहिनी तरफ मुड़ना था। बालकिशन ने तो कुछ नहीं कहा पर पीछे बैठे पण्डित ने चौराहे से सौ मीटर पहले ही अपना दाहिना हाथ नब्बे डिग्री पर हवा में तान दिया, ताकि पीछेवालों को पता चल जाए कि निकट भविष्य में यह महान सवारी दाहिनी तरफ मुड़ने वाली है। वायुमण्डल में धरती के समानान्तर उठा पण्डित का लम्बा और लहराता हाथ एक विशाल दैत्याकार झापड़ जैसा था जो कभी भी किसी के भी गाल पर चिपक सकता था।

और ठीक यही हुआ।

सामने से आते एक साइकिल सवार लड़के की नाक पर पण्डित का झापड़ फुल स्पीड से टिका। साइकिल सवार बाजू में से निकलते स्कूटर पर लुढ़का। स्कूटर एक ताँगे के नीचे आते-आते बचा। समझदार घोड़े ने उसे समय पर देख लिया। लेकिन स्कूटर की हेडलाइट फूट गई।

देखते-देखते भीड़ इकट्ठी हो गई और पण्डित के पिटने की पवित्र बेला मानो आ ही गई।

लेकिन बालकिशन साथ था। वह हमारी मण्डली का रक्षा विशेषज्ञ था। सबकी रक्षा करता था। पण्डित की भी कर ही देता, लेकिन पण्डित से एक बेवकूफी हो गई।

भीड़ को उग्र होते देख पण्डित अपने सीधे हाथ की उँगली को बन्दूक की तरह तानकर पीड़ित लड़के को डाँटते हुए बोला, "आय एम वेरी सॉरी!"

इस बात पर सब भड़क गए। कोई बोला, "हेडलाइट फूट गई, उसके पैसे कौन भरेगा?"

कोई दूसरा बोला, "पहले इस साइकिलवाले को अस्पताल ले जाओ और इसकी मरहम-पट्टी करवाओ। बड़े आए सॉरी वाले!"

पण्डित को लगा कैसे ज़ाहिल लोगों से उनका वास्ता पड़ा है। समझ ही नहीं रहे। झुँझलाकर बोला, “जब मैंने कह दिया कि आय एम वेरी सॉरी तो फिर क्या बात है?”

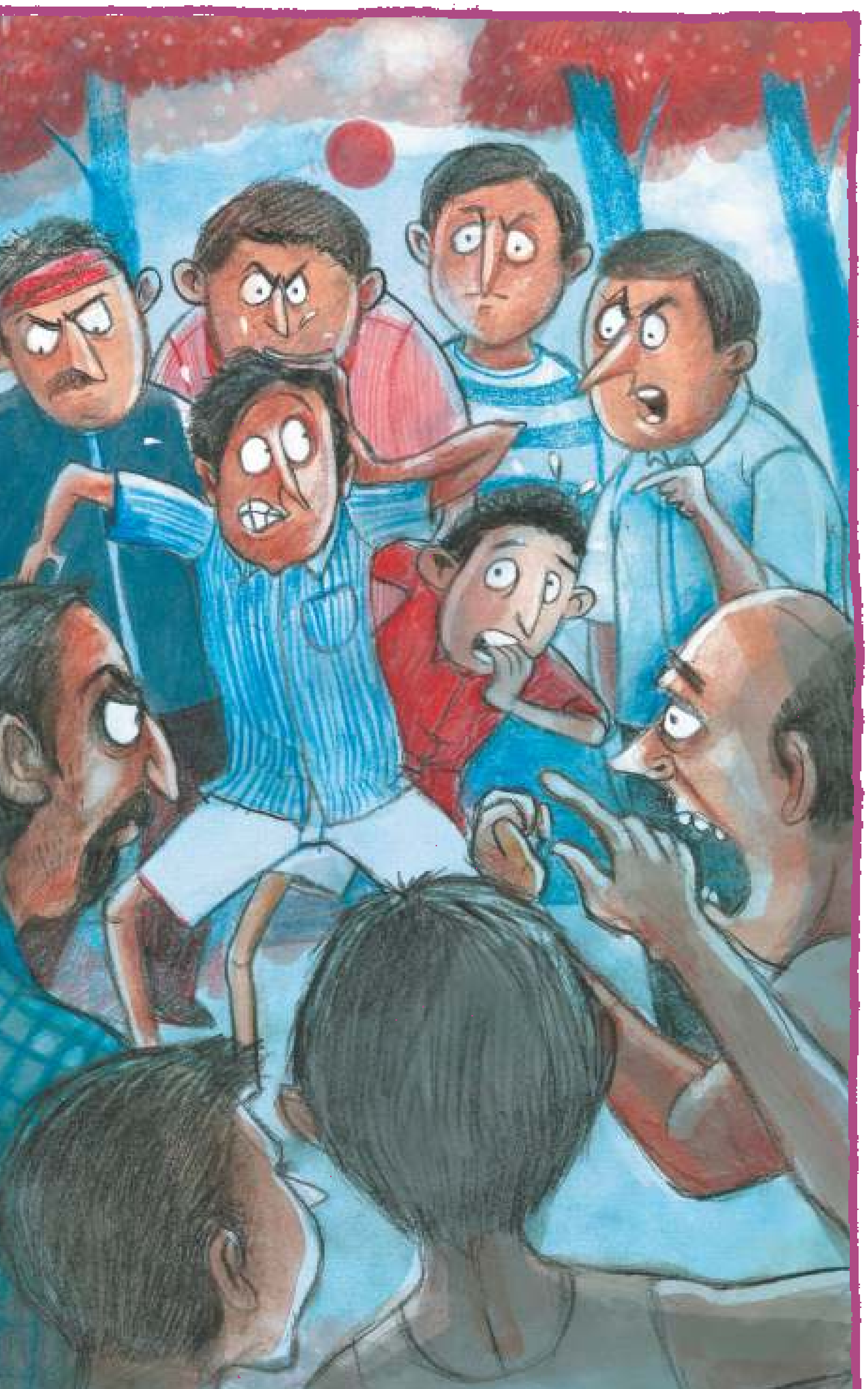

अगर किसी ने आकर हमें बता न दिया होता कि पास के चौराहे पर बालकिशन और पण्डित को पब्लिक ने घेर रखा है और पण्डित किसी भी समय पिट सकता है और इसी वक्त सप्पू-मुन्नू-जक्कू-मज्जू-राधे श्याम-दयाराम वगैरह हम सब दौड़कर घटना स्थल पर पहुँच न गए होते तो उस दिन निश्चित ही चौराहे पर पण्डित की पूजा हो जाती। दो-चार बेचारे बालकिशन को भी पड़ जाते।

इसलिए दूसरे दिन बगैर हमारे कुछ कहे पण्डित ने अपनी स्कॉलरशिप के सारे पैसे हमारे खिलाने-पिलाने पर खर्च कर दिए। अमरूद-ककड़ी-सेवचिवड़ा-मूँगफली जो चाहो, जितना चाहो।

लेकिन इसके लिए उसे घर पर मार खानी पड़ी।

जब यह बात उसने अगले दिन आकर बताई तो हम लोगों को बहुत बुरा लगा। बच्चे ने अपने दोस्तों को कुछ खिला-पिला दिया – वह भी अपनी स्कॉलरशिप के पैसों से – तो क्या हो गया! क्या हम अपनी मर्ज़ी से इतना भी नहीं कर सकते?

हमने चन्दा करके पण्डित को उसके पैसे लौट दिए कि जा, घरवालों को दे देना।

(शेष भाग पेज 23 पर)

चित्रः प्रिया कुरियन

हमें पानी में खूब भीगो कर खुद साफ बच निकला अनुपम

दिलीप चिंचालकर

दिल्ली में सर्दियों की सुबह है। साढ़े छह का समय है। अभी अँधेरा छँटा नहीं है, कोहरा है। मैं रेल से उतरकर अपना बैक-पैक लादे राजघाट कॉलोनी के इस घर के पिछवाड़े झुरमुट में घुस रहा हूँ। पतझड़ में गिरे पत्ते ओस से भीगे हैं। उनके पैरों तले कुचलने की कोई आवाज़ नहीं आती। जैसे ही कोने पर से मुड़ता हूँ, कचरादान से कुछ बीन रहा बन्दर चौंक जाता है। मैं भी। मैं आगे बढ़कर बरामदे का दरवाज़ा खोलता हूँ। जाली के बाएँ दरवाज़े में उँगली अटकाकर खींचते ही दायाँ अपने-आप खुल जाता है।

चित्रः सोपान जोशी

अभि भैया जाग गए हैं। अन्दर अँधेरा है मगर घर गर्म है। घर में सब सो रहे हैं। मैं बगैर बत्ती जलाए अपना सामान उतारता हूँ और गुसलखाने में जाकर ठण्डे पानी से हाथ-मुँह धोता हूँ। सोच रहा हूँ कि किसी कमरे में घुसकर रज़ाई में दुबक जाऊँ या सुबह की सैर दुबारा कर आऊँ। तभी अन्दर का एक दरवाज़ा खुलता है और मंजू निकल आती हैं। मंजू मेरे मित्र अनुपम की पत्नी हैं। वह चाय बनाती हैं। मैं अपने झोले में कुछ टटोलता हूँ। खटर-पटर होती है और पमपम जाग जाता है (बेटा शुभम बचपन में अनुपम को पमपम कहता था न इसलिए अभी भी कभी-कभी...)। फिर हम साथ में गर्म पानी और चाय पीते हैं। गपशप करते एकाध बिस्कुट और मेरे रात के खाने से बचा पराठा कुतरते हैं और दिन की शुरुआत होती है।

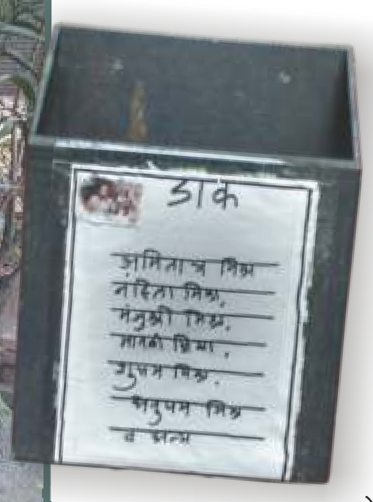

21 राजघाट कॉलोनी, सामनेवाला दरवाज़ा

बचपन का शुभम और अनुपम

इस घर में पहली बार मैं सामनेवाले दरवाज़े से मित्र के बेटे की हैसियत से आया था। यानी भवानीप्रसाद मिश्र के मित्र, मेरे पिता का मैं बेटा। फिर अगले चालीस से अधिक वर्ष बेटे, यानी उनके पुत्र अनुपम के मित्र की तरह पिछवाड़े के रास्ते। अभी जिस बरामदे का उल्लेख हुआ है उसकी जाली में प्लास्टिक की चादर लगाकर एक कमरा बना हुआ है। दरवाज़े से लगी लकड़ी की एक भारी मेज है। जिस पर अचार की बरनियाँ, ताँबे के जग में पानी, सूखने के लिए मसाला लगी मिर्चियाँ रखीं हैं। राष्ट्रीय कवि (अनुपम के पिता) यहीं बैठे ट्रांजिस्टर पर क्रिकेट का आँखों देखा हाल सुन रहे हैं। वहीं एक कुर्सी पर डटा मैं एक पुराने लिफाफे पर कलम से कुछ चितेर रहा हूँ। तभी एक म्याऊँ (शुभम के बचपन की बिल्ली) बाहर से पुकार करने लगती है। मैं दूध की पतीली को गर्म पानी से खंगाल कर उसके लिए पेय बनाने लगता हूँ। अनुपम उस लिफाफे को सहेजकर रख लेता है। कुछ समय बाद यही चित्रण एक पुस्तिका का मुखपृष्ठ बनकर प्रकट होता है और मैं अनजाने में चित्रकार बन जाता हूँ।

मैं चित्रकार नहीं था न कभी बनना चाहता था परन्तु अनुपम ने मुझे बना ही दिया। वह गुरू आदमी था। मेरा मित्र और मेरा गुरू। भाई-बहनों में कोई वास्तुकार है, कोई डॉक्टर, संगीतकार तो कोई आकाशवाणी समाचार सम्पादक, मगर यह बेटा संस्कृत पढ़ता है क्योंकि घर में किसी को देव-भाषा पढ़नी चाहिए। फिर संस्कृत से ऐसा संस्कारी कि पिता की लगाई हुई एक सामान्य नौकरी ज़िन्दगीभर खूब मन लगाकर करता रहा और उसी में कमाल कर दिखाया। उसके दरवाज़े पर कई संस्थाएँ रुपयों की थैलियाँ लिए खड़ी रहीं फिर भी।

संस्कृत में अनुपम ने भरत का नाट्यशास्त्र पढ़ा था। नौकरी में भाषा और काम बदल गए फिर भी नाटक जीने का हिस्सा बना सो बना रहा। मंच पर कब प्रवेश करना, कब क्या और कितना बोलना, कब परदे के पीछे ओझल हो जाना, यह उन्हें खूब आ गया। थोड़ा मनोरंजन, थोड़ी गम्भीरता और पूरी समझ केवल नाटक की दी हुई नहीं, उनकी अपनी खूबी थी।

चिपको आन्दोलन वाले चंडीप्रसाद भट्टजी और अनुपम का काफी साथ था। कभी उनकी ग्राम स्वराज समिति ने रामलीला करना तय किया जिसके लिए उन्हें देवों और दैत्यों के मुखौटों की आवश्यकता पड़ी। सो वे पहाड़ से उतरकर खरीददारी के लिए दिल्ली आ गए कि वहाँ अनुपम भाई हैं। और अनुपम भाई भी मज़े से दफ्तर का काम छोड़कर चावड़ी बाज़ार चल पड़े ऐसा कहते हुए कि यह भी पर्यावरण का ही काम है। ठीक ही तो था, पर्यावरण का काम यानी केवल पेड़ लगाना तो नहीं, खाना, सोना, थोड़ा आनन्द करना सभी कुछ। उसमें झूला पुल तानने के लिए तार या बकरियाँ बाँधने के लिए खूँटे खरीदना, सभी शामिल है। दूर-दराज के देहाती मित्रों के लिए अनुपम राजधानी में अपने आदमी थे। चावड़ी बाज़ार में कागज़ की या चाँदनी चौक की गलियों में सुनहरी छपाई करनेवाले की खोज में भटकते हुए वे कहते कि भैया एक पुड़िया चना ले लेते हैं ताकि बाद में लोगों को बता सकें कि हमने चना फाँकते हुए काम किए हैं।

ऐसा नहीं कि अनुपम ने मुझे केवल चने ही खिलाए। अच्छा काम करने पर ऊँचे रेस्तरां की रवा इडली, दरयागंज की आलू चाट, बंगाली

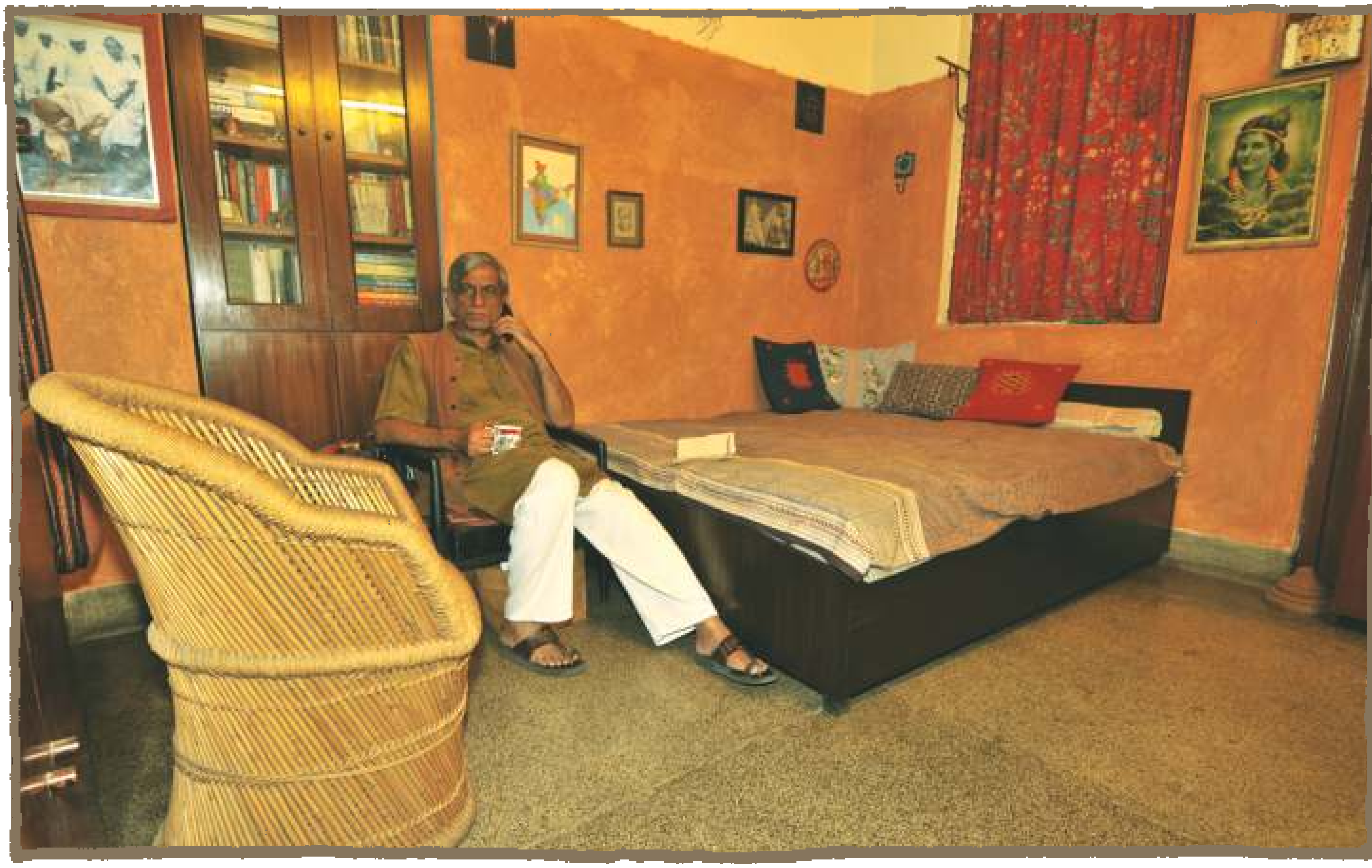

चित्र : सोपान जोशी

मार्किट की रसमलाई, फलोदी की साग-पूरी, जैसलमेर का चना झोल, ऐसी कई चीज़ें थीं जिनका अनुपम का मुझसे वादा रहता। उन्हें जीरा-आलू पसन्द था। राजस्थान हो या फ्रांस या अभी-अभी के अस्पताल जिनमें वे भर्ती रहे, खाने की उनकी यही चाह रहती।

उनके शाकाहारी स्वभाव को देखकर उनके मित्र बनवारी हमें पुरानी दिल्ली के एक भोजनालय ले गए। वहाँ के खाने की प्रशंसा के बड़े पुल बाँधे गए। खाना निश्चित ही बढ़िया था। दाल भी सुस्वादु थी मगर इधर कटोरी में मिर्च के साथ एक तिलचट्टा भी निकल आया। अनुपम ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप उसे हटा दिया और दाल पी ली। बाकि दोस्त गपशप में मगन थे। मैंने घर आकर पूछा तो अनुपम बोले, "यार, मैं जरा-सा नाम का उच्चारण भी कर देता तो मित्रों के साथ दूसरे खानेवालों का भी मुँह का ज़ायका बिगड़ जाता। अब जाने भी दो।"

उस दिन राहुल काका, जो एक बड़े अखबार के बड़े सम्पादक थे, मुझसे बोले कि तुम्हारा यह दोस्त बेनज़ीर है। उन दिनों बेनज़ीर भुट्टो पाकिस्तान की प्रधानमंत्री बनीं थीं। मुझे ज़रा देर से समझ में आया कि भुट्टोबई की हो न हो, इस दोस्त की कोई उपमा नहीं है। सारी नहीं तो भी काफी सारी बातों का वह प्रधान है। लिखेगा तो हर पंक्ति नपी-तुली, ज़रूरत से अधिक एक शब्द नहीं और सहज इतना कि एक बार उठाने के बाद बगैर पूरा पढ़े नीचे नहीं रखा जाए। सम्पादक ऐसा कि गांधीजी के लेख भी काट-छाँटकर दिलचस्प बना दे। बोलने खड़ा हो तो क्या विश्वविद्यालय के व्याख्यान क्या प्रसिद्ध टेड-टॉक, सुनकर लगेगा कि वह बोलता ही चला जाए। यह तभी हो सकता है जब कोई मन से अच्छा हो और हर काम में अपना मन लगाए। इसीलिए तो अनुपम खाना भी अच्छा बना लेता था। कई बार मंजू खाना खाने बैठ जाती और अनुपम गर्म फुल्के उतारकर परोसता जाता। उस ने मेरी चित्रकारी तो सुधारी

ही और साफ़-सुथरी हिन्दी लिखना भी सिखाया।

सुबह ज़रा देर तक सोना अनुपम को अच्छा लगता था। फिर भी उठकर तसल्ली से चाय पीना, घर अवेरना, पौधों को पानी देना, घर-काम में मंजू की मदद करना, नहाना और फिर नौ बजते-बजते दफ्तर के लिए निकल जाना। क्योंकि गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान जहाँ वह काम करता था वहाँ सुबह दस बजे प्रार्थना होती है। और कई बार प्रार्थना में उसके अलावा एकाध ही कोई होता। उसके लिए गाँधीवाद कोई कोट नहीं था जो मौका देखकर पहन लिया जाए। जो काम अच्छा और करने लायक हो वह किया जाए। मसलन दफ्तर में साफ-सफाई करना, ज़रूरत पड़ने पर सम्पादक की कुर्सी से उठकर पत्रिकाओं के पुलिन्दे छोड़ने डाकघर चले जाना वगैरह। ऐसे ही एक बार राधाकृष्ण जी के काम से अनुपम को थानवीजी के यहाँ बीकानेर जाना पड़ा। थानवीजी उत्तर लिख रहे थे और अनुपम को फर्श में लगी सुन्दर जालियों ने मोह लिया। भला इनका यहाँ क्या काम हो सकता है! पूछने पर पता चला कि राजस्थान में वर्षा कम होती है। जितनी भी होती है उसे सम्हालकर रख लेते हैं और वह पानी साल भर उपयोग में लाते हैं। बस, इस काम में अनुपम की दिलचस्पी जागी और "पानी का काम" जीवन भर का काम बन गया। खूब घूम-घूम कर ताल-पोखरों-कुओं-कुईयों की, उनको बनानेवालों की, पानी से जुड़ी परम्पराओं की जानकारी इकट्ठा की और एक अद्भुत पुस्तक लिख डाली "आज भी खरे हैं तालाब"। यह पुस्तक सच में लोकार्पित (लोगों को अर्पित) है। यह खूब छपी, लाखों में। अनेक भाषाओं में छपी, फ्रांसिसी और अरबी में भी। ब्रेल में भी। फिर भी अनुपम ने इससे एक रुपया नहीं कमाया। दर्ज़नों संस्करणों बाद उसने एक संस्करण केवल भेंट करने के लिए छापा। पानी तो पानी है, छलक ही जाता है। अनुपम ने फिर एक पुस्तक लिखी "राजस्थान की रजत बूँदें"। वह भी खूब बही। ऐसी कि उसका नया संस्करण निश्चिन्त होकर लिखने के लिए फ्रांस के मशहूर "कोलेज दा फ्रांस" ने उन्हें अपने यहाँ बुलाया। राजस्थान में बननेवाले पुराने मकानों-कोठियों में कमल के फूल की आकृति अकसर रहती है। वह यह बताने के लिए कि गृहस्थ का स्वभाव इसके पत्ते की तरह होना चाहिए – पानी में होकर भी पानी से अछूता। वैसा ही तो उदाहरण अनुपम मिश्र ने हमारे सामने रखा है। जसमा ओढ़न-सा जस (यश) उन पर बरसता रहा।

अनुपम और मैं, पहली नज़र के यार थे। उसकी सब पुस्तकों-पत्रिकाओं की सज्जा मेरे हाथों हुई। एक बार उसने कहा था कि यार, हमारी जोड़ी "शंकर-जयकिशन" की तरह है। मैंने कहा, "भई, शंकर भी तुम हो किशन भी तुम हो। मैं तो बस, बीच-बीच में जय बोल देता हूँ।"

परन्तु अब तो तुम स्वयं जय हो गए हो अनुपम...

अनुपम ने पानी को सहेजने के पारम्परिक और चमत्कृत कर देनेवाली तरीकों को अपने लेखन का प्रमुख विषय बनाया। जल, नीर की तरह वह पानी के पर्यायवाची शब्द हो गया है।

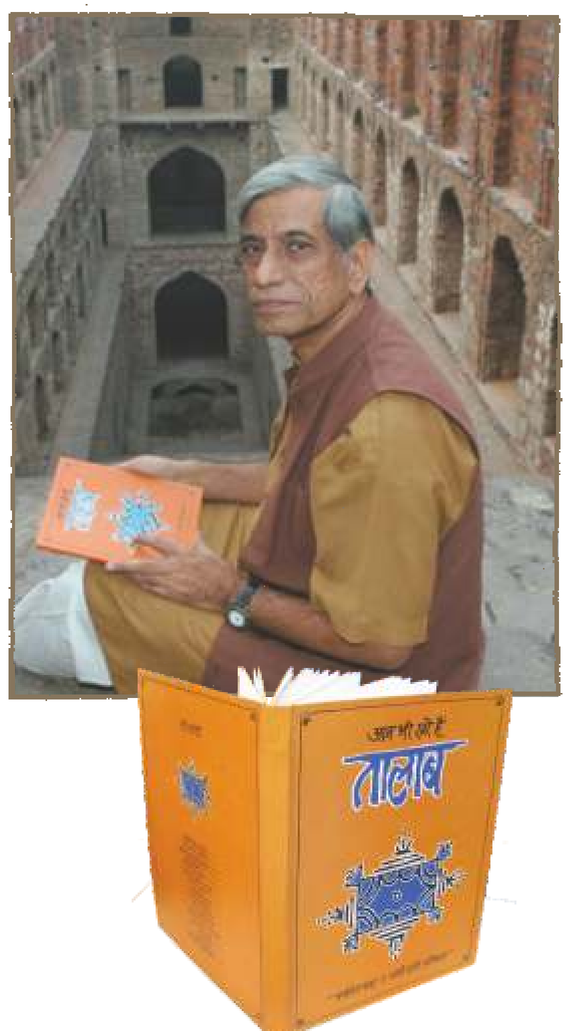

सच में लोगों को अर्पित पुस्तक - आज भी खरे हैं तालाब

चाँद
हर सहर
सूरज निकलने से
न बुझा

बुझा तो
इस गाँव में
बिजली के आने से।

कैनवस के जूते और रातरानी के फूल

चित्र : श्वेता

बाहर चाँद था। *अन्दर उसकी बुढ़िया थी। चाँद इस वक्त आसमान में इस तरह टँगा हुआ था जैसे किसी आर्ट गैलरी में नुमाइश के लिए कोई खूबसूरत-सा आर्टपीस टाँग दिया गया हो, जो हर किसी के लिए अलग-अलग मतलब और मौसिकी रखता हो। लेकिन आर्टपीस इस बात से पूरी तरह बेखबर हो कि नुमाइश में आनेवालों के लिए वो क्या मायने रखता है।*

बूढ़ा बुढ़िया के मायने तो समझता था, लेकिन चाँद के मायने नहीं समझता था।

अगर कोई उससे बुढ़िया के मायने पूछता था तो वो एक शब्द में बता देता कि बुढ़िया कछुआ है। कछुआ इसलिए क्योंकि बुढ़िया ज़्यादातर दुनिया की तरफ पीठ करके ही खड़ी होती थी और ज़्यादा उलझन होने पर अपने आप में घुसकर ज़ब्त हो जाती थी। वो या तो अकेले में बूढ़े के सामने निकल आती थी या फिर स्कूल के बच्चों के सामने। बुढ़िया का वो हिस्सा, जो दुनिया की ओर नहीं था, बेहद मुलायम था।

चाँद के मायने पूछे जाने पर बूढ़ा दुविधा में पड़ जाता और बुढ़िया की तरह अपने आप में मुण्डी घुसाकर छुप जाने की कोशिश करने लगता। क्योंकि ज़्यादातर लोग उसकी नज़र और समझ पर हँस देते। उसके हिसाब से, चाँद सफेद कपड़े का छोटा-सा पैबन्द था, जिसे काले तम्बू का छेद छुपाने के लिए, तम्बू के फटे हिस्से पर, रफ़ू की तरह टाँक दिया गया था।

“सुनो।” बुढ़िया ने कहा।

“हम्म?” बूढ़े ने पूछा।

“अगर हम कल से स्कूल नहीं जाएँगे तब दिन भर घर में बैठे-बैठे क्या करेंगे?”

बूढ़े ने जवाब नहीं दिया। बुढ़िया का सवाल सुनकर वो अचानक दुखी हो गया। उसे लगने लगा कि चाँद पीतल का गोल तवा है, जिसे घण्टे की तरह वो स्कूल में हर क्लास खत्म होने के बाद बजाता था। छुट्टी का बड़ा घण्टा बजने पर बच्चे अपनी-अपनी क्लास से ऐसे निकल आते थे जैसे इस वक्त आसमान से तारे निकल आए थे।

निखिल सचान

चम्पा इसलिए क्योंकि उसके कैनवस के सफेद जूते पर, यहाँ-वहाँ, पीले रंग के छींटे थे।

छुट्टी होने पर खुशी से बच्चों के चेहरे, इतनी शिद्दत से टिमटिमाने लगते थे कि बूढ़े का चेहरा चमककर चाँद हो जाता था।

बूढ़ा और उसकी बुढ़िया पिछले बाईस सालों से अपने घर के पासवाले स्कूल में मुलाज़िम थे। बूढ़े का काम था घण्टा बजाना और बुढ़िया का काम था बच्चों को स्टील की गिलसिया से पानी पिलाना। यूँ तो बूढ़ा कोई और काम नहीं करता था लेकिन बुढ़िया छुप-छुपाकर, ऐसे तमाम काम कर दिया करती थी जो उसकी नौकरी का हिस्सा नहीं थे।

जैसे जब कोई बच्चा पानी माँगने आता और बुढ़िया उसके जूते के फीते खुले देखती तो प्यार से उन्हें बाँध देती थी।

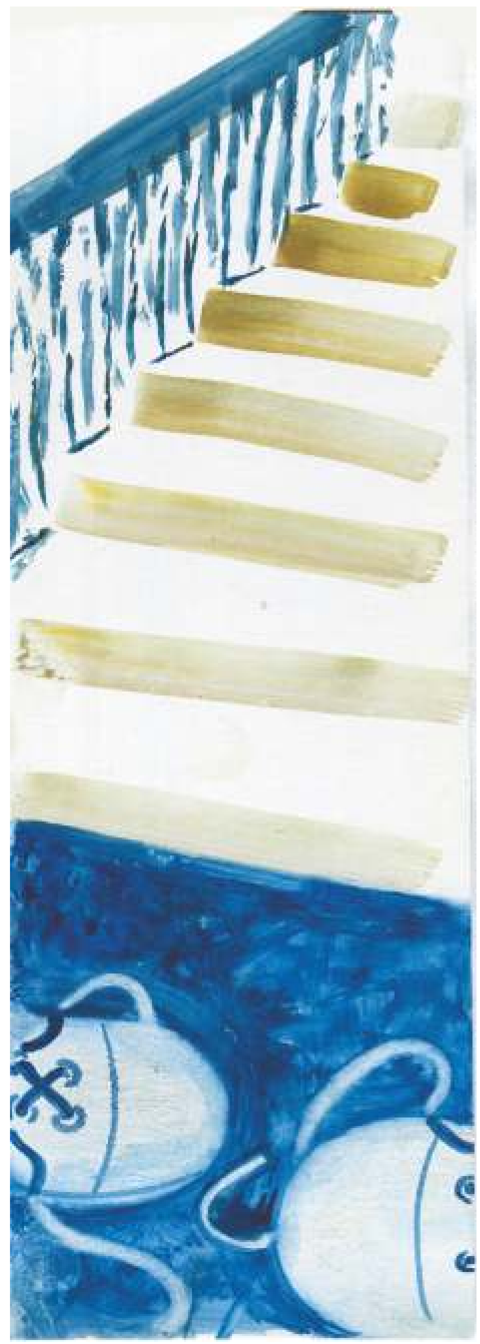

वो उन्हें इतने सलीके से बाँधती थी कि फीते से फूल का आकार बन जाता था। एक गोलमटोल बच्चा जो तीसरी क्लास में पढ़ता था, वो उसे रातरानी का फूल कहता था। रातरानी इसलिए क्योंकि वो कैनवस का सफेद जूता पहनता था। एक प्यारी-सी बच्ची जो दूसरी क्लास में पढ़ती थी, उसे चम्पा का फूल कहती थी। चम्पा इसलिए क्योंकि उसके कैनवस के सफेद जूते पर, यहाँ-वहाँ, पीले रंग के छींटे थे।

फीते बँधवा के जब मुट्ठी भर बच्चे वापस लौट रहे होते तो मालूम होता जैसे एक प्यारी-सी फुलवारी उछलते-कूदते चली आ रही हो।

यदि कोई बच्चा अपने टिफिन का ढक्कन नहीं खोल पा रहा होता तो वो बुढ़िया से खुलवाने आ जाता था। बुढ़िया पहले तो अपने आँचल से पोंछकर डिब्बे की चिकनाई खत्म करती फिर मुट्ठी से ढक्कन के किनारे की तरफ हलका-सा धक्का मारकर डिब्बा खोल देती थी। एक बच्चा जिसका नाम पुपुल था, पहले तो डिब्बे में झाँककर ये देखता था कि आज माँ ने खाने के लिए क्या भेजा है। फिर बुढ़िया के चेहरे में झाँककर देखता था कि उसके चेहरे पर कौन-सा भाव है।

पुपुल का चेहरा बुढ़िया के चेहरे से सी-सॉ खेलता था।

मैगी भेजे जाने पर बुढ़िया शरारत से हँसती थी क्योंकि उसे पता था कि पुपुल को मैगी बहुत पसन्द है और आलू-मेथी भेजे जाने पर बुढ़िया सहानुभूति जताती थी। जवाब में पुपुल जीभ निकालकर, अपना गला पकड़कर, उलटी करने की आवाज़ निकालता तो बुढ़िया को सच में उबकाई आने लगती थी।

पूरी उम्र स्कूल में काम करते हुए बुढ़िया ने समझ लिया था कि बच्चों को स्कूल में किस-किस चीज़ की ज़रूरत पड़ सकती है। या ये कह लें कि उसने हर वो ज़रिया खोज निकाला था जो उसे किसी बच्चे से जोड़ सकता था। जैसे उसके आँचल में सुई-धागे और नेल-कटर से लेकर पेंसिल छीलने का ब्लेड भी हुआ करता था। खेलते-कूदते यदि किसी की शर्ट का बटन टूट जाए तो असेम्बली में नाखून, जूते और ड्रेस की जाँच के वक्त, पिटाई होने का डर रहता था। इसलिए बुढ़िया इंटरवल में फटाफट टूटे बटन टाँक देती थी। वो खुद ही पानी पिलाते वक्त ज़बरदस्ती बच्चों के नाखून भी देख लिया करती थी।

जब पी.टी. के मास्टर को इस बात का पता चला तो उसने बुढ़िया की उम्र और बच्चों के कच्चे कानों का लिहाज़ किए बिना उसे खरी-कसैली गालियाँ सुना दीं और ज़बरदस्ती बुढ़िया के आँचल की गाँठ खुलवाकर उसकी दुलार भीगी पूँजी फिंकवा दी। हालाँकि बुढ़िया ने, अगले ही दिन सारा ज़रूरी सामान फिर से इकट्ठा कर लिया और उसे मटके के पीछे, दीवार की तरफ, लुकाकर रखना शुरू कर दिया।

बूढ़ा उसे लाख समझाता था कि ये सब काम छुपा के किया करे। लेकिन जो थोड़ी बहुत चालाकी उसने जवानी में सीखी थी, वो बुढ़ापा चढ़ते-चढ़ते दिमाग से उतर गई थी। हालाँकि बूढ़ा बुढ़िया को सावधान रहने की हिदायतें देता था लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि वो अपना छोटा-सा काम मुस्तैदी से कर ले जाता था।

तुम भी थोड़ा ध्यान रखना कि घड़ी देखकर हर आधे घण्टे बाद ज़ोर-से घण्टा बजा दिया करना।"

ले-देकर उसके पास एक ही काम था – घण्टा बजाना।

बूढ़ा हर आधे घण्टे बाद, पीतल के भारी-भरकम घण्टे को, एक बार ज़ोर से बजाता था – टन्न....। आवाज़ का ज़ोरदार होना ज़रूरी होता, ताकि स्कूल के हर कोने में उसे सुना जा सके। एक वो वक्त था जब उसकी हाथों में जान हुआ करती थी। घण्टे की आवाज़ कानों में सट से घुसकर ऐसे बिला जाती थी कि ज़रा-सा खुजाने का मन होता था। और एक आज का वक्त है जब आवाज़ मेन बिल्डिंग के आगे की क्लासेज़ तक ही रह जाती है। बारिश के उन बादलों की तरह, जो उठे तो ज़ोर-से, लेकिन पहाड़ के एक छोर में बरस के हवा हो जाएँ।

पीछे की बिल्डिंग में छठीं से बारहवीं क्लास के लड़के पढ़ते थे। वो अकसर शिकायत करते थे कि बुड्ढे की वजह से कुछ ऐसी क्लासेज़ लम्बी हो जाती थीं जिनका वक्त पर खत्म होना बहुत ज़रूरी हुआ करता था। एक बार 9th-C की गणित की क्लास चार मिनट लम्बी हो गई और कुछ ऐसे लड़के नप गए जो उस दिन घर से सवाल बनाकर नहीं लाए थे। चार मिनट के अन्दर महेश मिश्रा ने सत्रह शिकार किए। चार मुर्गे और पाँच हवाई जहाज़। अदद।

एक क्लास के दस मिनट अतिरिक्त खिंच जाने का मतलब होता था, अगली क्लास का छोटा हो जाना। और अगर कभी वो क्लास खेलों की होती थी तो पूरी-की-पूरी क्लास का गुस्सा उसके सर ही फूटता था। बूढ़ा 12th-B के लड़कों से बहुत डरता था। चेहरे पर नई-नई दाढ़ी-मूँछ आने की वजह से वो चिड़चिड़े भी थे और गुस्सैल भी।

वो गर्म मिज़ाज के थे और रात ठण्डे मिज़ाज की।

...

"क्या बिजली की घण्टी बजाने के लिए किसी आदमी की ज़रूरत नहीं होगी?" बुढ़िया ने बच्चों के से उत्साह से पूछा।

बूढ़े ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। वो अभी तक खिड़की के बाहर कुछ देख-ढूँढ रहा था।

"प्रिंसिपल साहब से बात कर के देखो न! कल से स्कूल नहीं जाएँगे तो सब कुछ कितना सूना हो जाएगा। इतनी-सी बात पर कोई निकाल देता है भला!"

"अच्छा, अगर ऐसा हो कि हम उनसे कहें कि हम कुछ महीना स्कूल में काम करने का पैसा नहीं माँगेंगे और अब घण्टा बजाने में एक भी दिन गलती नहीं होगी! तुम भी थोड़ा ध्यान रखना कि घड़ी देखकर हर आधे घण्टे बाद ज़ोर-से घण्टा बजा दिया करना।"

"अरे बुढ़िया! क्या तुमको सच में ऐसा लगता है कि महीने के तीन सौ रुपए बचाने के लिए वो मुझे काम से निकालने का विचार बदल देंगे?"

"हम्म....। राम भरे चाभी जितना, उतना चले खिलौना।"

"आदमी मशीन से जितना खाता है, उससे ज़्यादा मशीनें आदमियों को खा जाती हैं। अलमारी से तेल उठा ला। तेरे जोड़ों में लगा देता हूँ।"

"अच्छा, तुम कलाई घड़ी खरीद लो। उसे ताके रहा करना और ठीक टाइम पर घण्टा बजा दिया करना।"

"काहे हैरान हो रही है बुढ़िया। जा तेल लेकर आ। जोड़ पिराने लगेंगे तेरे।" बूढ़े ने

खिड़की बन्द करते हुए कहा। फिर कुछ सोचते हुए उसने खिड़की चार-छह अँगुल खुली छोड़ दी।

बाहर झींगुर जाने किसकी पाजेब चुरा लाया था, जिसे बजा-बजाकर वो झिंगुराइन को ललचा रहा था। झिंगुराइन के पैरों के हिसाब से पाजेब थोड़ी बड़ी थी। खिड़की जितनी खुली हुई थी, उतने से कुछ-कुछ आवाज़ें, झुककर-सरककर अन्दर आ-जा रही थीं। कहने को तो खिड़की के पल्लों के बीच दरार पतली ही थी लेकिन उससे झींगुर की दुबली-पतली-छोटी आवाज़ भी आ सकती थी और सड़क पर चलते ट्रकों की मोटी और लम्बी आवाज़ भी आ सकती थी।

आवाज़ खिड़की खटखटाकर नहीं आती थी। साधिकार चली आती थी।

बूढ़ा पूरी हथेली पर तेल मलकर, हथेली की गद्दी से बुढ़िया के घुटने की मालिश कर रहा था। उसके खुरदुरे हाथ की लकीरें काफी गहरी थीं। कुछ तेल तो लकीरें सोख जाती थीं और कुछ हथेलियों का खुरदुरापन। मालिश से बुढ़िया को आराम मिला और वो कछुए की तरह अपने आप से बाहर निकल आई। उसके चेहरे के भाव, जो

अभी तक ज़ब्त थे, वो भी बाहर निकल आए। कुछ भाव उसकी झुर्रियों में बिला गए और कुछ उसकी उमर में।

बूढ़ा और बुढ़िया के बच्चे नहीं हुए थे इसलिए उन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी स्कूल के बच्चों के सहारे खुशी-खुशी गुज़ार दी। उन्हें इस बात का अहसास ज़्यादा नहीं होता था कि स्कूल में पढ़ते-खेलते बच्चों में से कोई भी बच्चा उनके घर नहीं लौटता। वो बूढ़े-बुढ़िया की ज़िन्दगी में ऐसे आते थे जैसे घर की छतों पर परिन्दे। पुराने छज्जे गुलज़ार करके परिन्दे रोज़ शाम अपने-अपने घोंसलों में लौट जाते थे। उनके लौट जाने के बाद भी छज्जों पर परिन्दों की चहचहाहट कुछ अतिरिक्त देर के लिए ज़रूर रह जाती थी।

पुराने घरों के छज्जे गूँजते ज़्यादा हैं।

"बस अब तेल मत लगाओ। तेल कब का खत्म हो गया...।"

"कुछ सोच रहे हो क्या?""

"हम्म....।"

"बच्चों के बारे में?"

"हाँ।"

"मैं भी।"

"तुम क्या सोच रही हो?"

"पहले तुम बताओ... तुम क्या सोच रहे थे?"

"मैं सोच रहा हूँ कि अगर मुझे स्कूल से निकाले जाने की बात कुछ दिन पहले बता दी जाती तो मैं रोज़-रोज़ छुट्टी का खूब लम्बा घण्टा बजाया करता। छुट्टी के लम्बे घण्टे से सबसे ज़्यादा पहली और दूसरी क्लास के बच्चे खुश होते हैं। दूसरी क्लास का एक छोटा बच्चा जब घर जाने के लिए दौड़ता है तो उसके पैंट सरकती है।"

"उसका नाम पुपुल है। उसकी पैंट में बद्धी तो है लेकिन उसे वो कन्धे से उतारकर जेब में खोंस लेता है।" बुढ़िया ने मुस्कराते हुए कहा।

"वो एक दिन मटकते-मचकते मेरे पास आया था और शर्माते हुए बोला कि दादा जी! आज दस बजे वाला घण्टा पाँच-सात मिनट पहले बजा दीजिएगा। वो अँग्रेज़ी की कॉपी लाना भूल गया था। कहने लगा कि वो सबसे आखिरी सीट पर छुप के बैठ जाएगा और उसके हिसाब से अगर घण्टा थोड़ी देर पहले बज गया तो वो कॉपी चेक कराने से बच जाएगा।"

"और तुमने वक्त से पहले घण्टा बजा दिया?" बुढ़िया ने झूठ-मूठ का गुस्सा दिखाते हुए कहा।

"हाँ, दस मिनट पहले ही।" बूढ़ा खिलखिलाकर हँसते हुए बोला।

बुढ़िया भी खिलखिलाकर हँसी। दोनों इतना हँसे कि उन्हें

(शेष भाग पेज 27 पर)

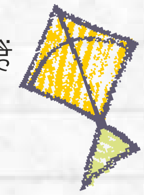

तारे टिम-टिम करते हैं
आसमान में रहते हैं
बच्चे उनको गिनते हैं
एक-दो-तीन करते हैं
जल्दी-जल्दी गिनते हैं
गिनती भूल जाते हैं

–अनन्या प्रजापति, विदिशा, म.प्र.

ठण्डी का कहर

ठण्डी का मौसम आया
गरीबों की मुश्किल बढ़ाया
ढँकने के लिए ना तन पर कपड़ा
चलने के लिए ना पाँव में जूता
रहने के लिए ना घर है अपना
ठण्डी का मौसम आया
गरीबों की मुश्किल बढ़ाया

– मिथिलेश कुमार, नवीं,
भरौली, परिवर्तन नरेन्द्रपुर, सीवान, बिहार

–आदित्य शेलार, नवनिर्मिति मुम्बई, महाराष्ट्र

प्रकृति

– प्रस्तुतिः आशुतोष, आठवीं,
डीपीएस पटना, बिहार

ये प्रकृति शायद कुछ कहना चाहती है मुझसे
ये कान के पास से गुज़रती हवाओं की सरसराहट
ये पेड़ों पर फुदकती चिड़ियों की चहचहाहट
ये समुद्र की लहरों का शोर
ये बारिश में नाचता मोर
कुछ कहना चाहती है मुझसे
ये प्रकृति कुछ कहना चाहती है मुझसे
ये चाँदनी रात
ये तारों की बरसात
ये खिले हुए सुन्दर फूल
ये उड़ती हुई धूल
कुछ कहना चाहती है मुझसे
ये प्रकृति शायद कुछ कहना चाहती है मुझसे
ये नदियों की कल-कल
ये मौसम की हलचल
ये पर्वतों की चोटियाँ
ये झींगुर की सीटियाँ
कुछ कहना चाहती है मुझसे
ये प्रकृति शायद कुछ कहना चाहती है मुझसे

–आनन्द पाराशर, 18 साल, मनोविकास विशेष विद्यालय उज्जैन, म. प्र.

फिओना एप्पल

नवम्बर 2012 में फिओना एप्पल ने यह खत अपने हज़ारों दोस्तों के नाम लिखा है। वे सब दक्षिण अमरीका में कहीं मिलने वाले थे। पर फिओना अपने कुत्ते की तबीयत खराब होने के कारण वहाँ नहीं जा पा रही थी।

दोस्तों के नाम एक चिट्ठी

आज शुक्रवार है। शाम के छह बज रहे हैं। इस खत के ज़रिए मैं तुम सब से अपने मिलने के प्लान में कुछ तब्दीली चाहती हूँ। क्या हम कुछ समय बाद मिल सकते हैं?

इसकी वजह है।

वजह है मेरी पालतू कुतिया है – जेनेट। वो करीब दो साल से बीमार है। उसकी छाती का ट्यूमर धीरे-धीरे बढ़ रहा है। वो तकरीबन 14 साल की है। चार महीने की थी जब वो मेरे पास आई थी। और मैं तब 21 की थी। मेरी बच्ची की तरह थी वो।

जेनेट पिटबुल नस्ल की है। वो मुझे एक पार्क में मिली थी। उसके गले में एक रस्सी पड़ी थी। उसके चेहरे और पूरे शरीर पर घाव थे। कुत्तों की लड़ाई करानेवाले अमूमन इसी प्रजाति के कुत्तों का इस्तेमाल करते हैं।

आज वो 14 की हो गई है पर आज तक मैंने उसे लड़ाई की पहल करते नहीं देखा। लड़ाई तो छोड़ो वो तो गुर्राने-काटने में भी पहल नहीं करती। समझ नहीं आता उसे इस बेहूदे काम के लिए चुना ही क्यों गया था।

इतने बरसों से हम दोनों अनगिनत घरों में रहे, कभी-कभी घुमन्तुओं के साथ रहे... पर हमेशा साथ रहे।

वो मेरे साथ मेरे बिस्तर में सोती रही। मेरे ही तकिए पर सिर रख। जब कभी मैं बहुत दुखी होती, चीखती-चिल्लाती, रोती और मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा होता तो अपने आँसू भरे चेहरे को उसके सीने पर ही रखती हूँ। वो भी जैसे मेरी तकलीफ को समझ रही होती। धीरे-से अपने पाँव मेरी पीठ पर रखकर मुझे अपने और करीब ले

आती। वो मेरी माँ बन जाती। मैं उसकी बच्ची। मैं वैसे ही सो जाती। उसकी ठुड्डी मेरे सिर के ऊपर मुझे तसल्ली देती रहती।

जब मैं गाने लिख रही होती वो पियानो के नीचे बैठी रहती। मैं जब रिकॉर्ड करती तो वो कभी न भौंकती। जब हमने अपना आखरी एलबम रिकॉर्ड किया वो मेरे साथ मेरी स्टूडियो में थी।

अपने काम के चलते अकसर मुझे हफ्ते-दो हफ्ते के लिए बाहर जाना पड़ता है। पिछली बार जब 5 दिन बाद जब मैं घर लौटी तो उसे हमेशा की तरह उछलता-कूदता पाया।

उसे एजिसन्स रोग है। इसलिए नियमित रूप से इंजेक्शन लगाने पड़ते हैं। वो तनाव और खुशी किसी को भी बहुत झेल नहीं पाती है। पर बावजूद इस सब के वो हमेशा मस्त और खिलंदड़ी रहती है। अभी 3 साल पहले तक तो वो एक पिल्ले की तरह बरताव करती थी। आज वो मेरी सबसे अच्छी दोस्त है, मेरी माँ, मेरी बेटी। मेरा ख्याल रखनेवाली भी वही है। उसी ने मुझे प्यार करना सिखाया।

मैं अभी दक्षिण अमरीका नहीं आ सकती।

मैं जानती हूँ कि वो बूढ़े होने या मरने से डरी हुई नहीं है। जानवरों में जीने की इच्छा तो होती है, पर वो यह नहीं सोचते कि जीवन फिजूल है और यह कि कल को हम मर जाएँगे तो क्या होगा। इसीलिए तो उनका साथ इतना प्यारा होता है।

मैं जानती हूँ कि उसके पास अब ज़्यादा दिन नहीं हैं। जल्द ही जैनेट वो नहीं रहेगी जो जीवन भर रही है। वो कुछ और हो जाएगी। वो हवा में होगी, मिट्टी में होगी, बर्फ में होगी, और मुझमें होगी – हमेशा के लिए।

मैं उसे इस वक्त छोड़ नहीं सकती। मैं गई तो मुझे डर है कि वो मर जाएगी। मैं लोरी सुना उसे सुला पाऊँ, उसके संग रहूँ, यह खुशकिस्मती भी मुझसे छिन जाएगी।

कभी-कभी बीस मिनिट तो मुझे यही सोचने में लग जाता है कि कौन-से मोजे पहनूँ। पर द. अमरीका न जाने का फैसला लेने में मुझे ज़रा देर नहीं लगी। यही वो फैसले होते हैं जिनसे हमारी पहचान बनती हैं। मैं नहीं चाहती कि मुझे एक ऐसे इंसान के रूप में जाना जाए जिसने पेशे को प्रेम और दोस्ती से ज़्यादा अहमियत दी। मैं उसके लिए खाना पकाती हूँ। उसे चैन मिले, वो महफ़ूज़ रहे और उसे पता हो कि वो मेरे लिए कितनी खास है।

हममें से कितने ही लोग अपने प्रियजनों की मौत के ख्याल से ही डरे रहते हैं। यह डर हमें बहुत अकेला बना देता है।

वो मेरे जीवन का सबसे गहरा अनुभव होगा। जब वो यह दुनिया छोड़कर जा रही होगी।

इसलिए मैं घर ही में रहना चाहती हूँ। मैं उसके खर्राटे सुन रही हूँ। उसकी उखड़ी साँसें सुन रही हूँ। उसे सर माथे पर लगाए हूँ।

आप सब की दुआएँ मिलें, इसी उम्मीद के साथ

कि फिर मिलेंगे,

प्यार

फियोना

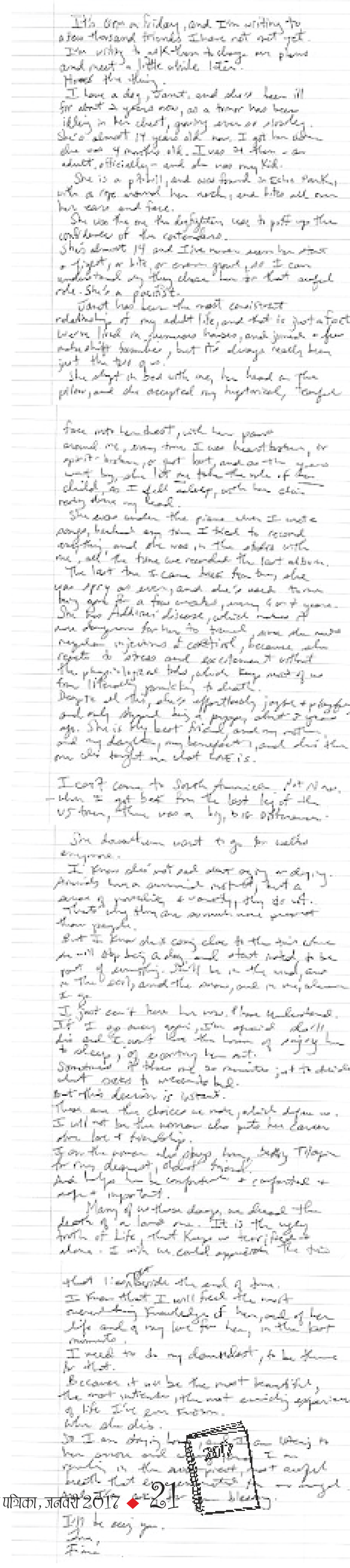

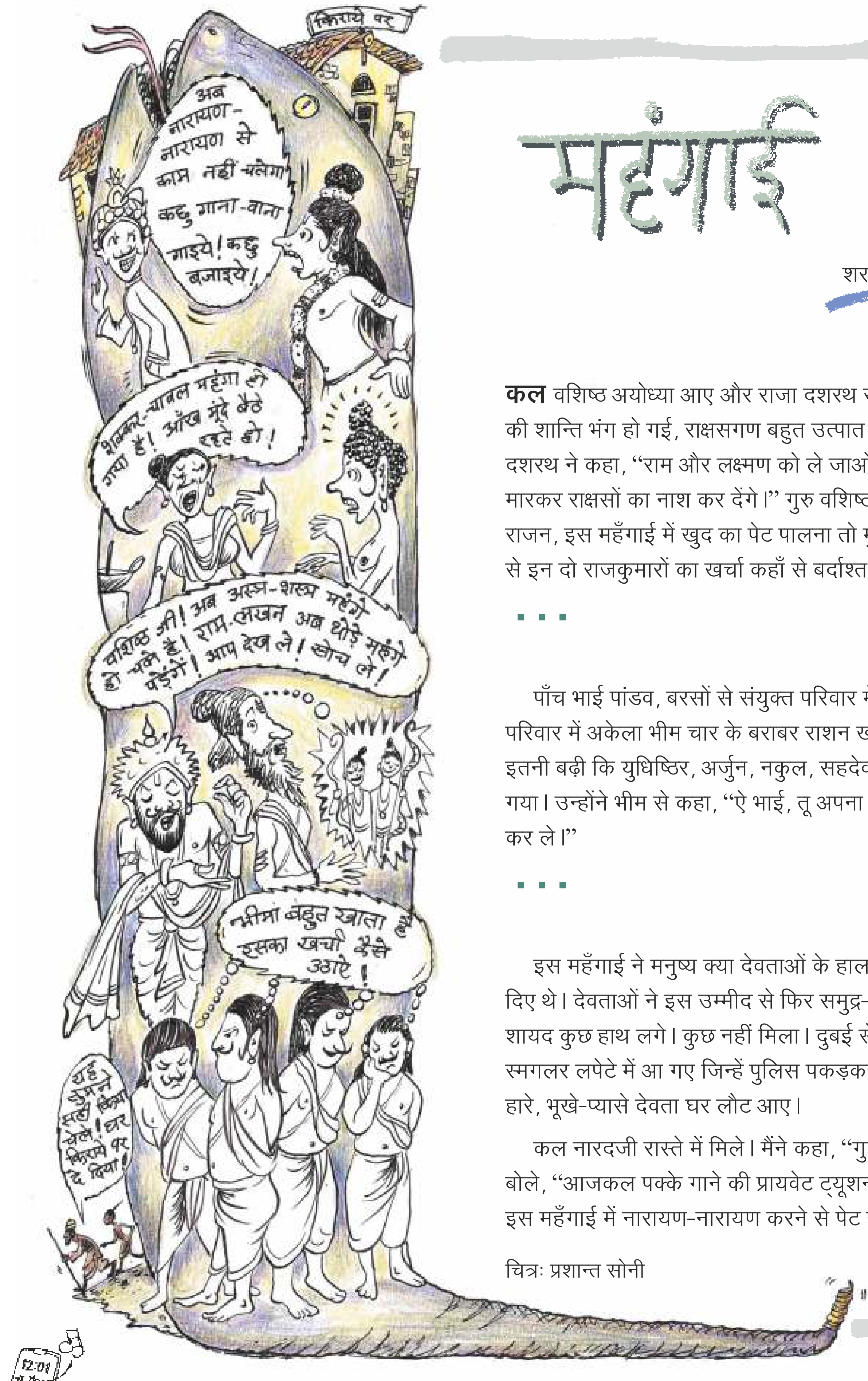

महँगाई

शरद जोशी

कल वशिष्ठ अयोध्या आए और राजा दशरथ से कहा, "आश्रम की शान्ति भंग हो गई, राक्षसगण बहुत उत्पात मचाते हैं।" दशरथ ने कहा, "राम और लक्ष्मण को ले जाओ। वे तीर मार-मारकर राक्षसों का नाश कर देंगे।" गुरु वशिष्ठ बोले, "नहीं राजन, इस महँगाई में खुद का पेट पालना तो मुश्किल है। ऊपर से इन दो राजकुमारों का खर्चा कहाँ से बर्दाश्त करूँगा?"

▪ ▪ ▪

पाँच भाई पांडव, बरसों से संयुक्त परिवार में रहते आए थे। परिवार में अकेला भीम चार के बराबर राशन खाता था। महँगाई इतनी बढ़ी कि युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव से नहीं रहा गया। उन्होंने भीम से कहा, "ऐ भाई, तू अपना अलग इन्तज़ाम कर ले।"

▪ ▪ ▪

इस महँगाई ने मनुष्य क्या देवताओं के हालात पतले कर दिए थे। देवताओं ने इस उम्मीद से फिर समुद्र-मँथन किया कि शायद कुछ हाथ लगे। कुछ नहीं मिला। दुबई से आते तीन स्मगलर लपेटे में आ गए जिन्हें पुलिस पकड़कर ले गई। थके-हारे, भूखे-प्यासे देवता घर लौट आए।

कल नारदजी रास्ते में मिले। मैंने कहा, "गुरुवर किधर?" बोले, "आजकल पक्के गाने की प्रायवेट ट्यूशन करने लगा हूँ। इस महँगाई में नारायण-नारायण करने से पेट नहीं भरता।"

चित्रः प्रशान्त सोनी

. . .

भगवान बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे तपस्या कर रहे थे। आँखें खोलीं तो देखा सामने सुजाता खड़ी है। बोले, "मेरे लिए खीर लाई हो?" सुजाता ने कहा, "तथागत, तुम तो पेड़ के नीचे आँखें मूँदे बैठे हो, तुम्हें क्या पता बाज़ार में शक्कर-दूध और चावल के भाव क्या चल रहे हैं। अब खीर बनाना गरीब सुजाता के बस की बात नहीं।"

. . .

दास कबीर बाज़ार में लुकाटी हाथ में लिए खड़े हो गए। बोले, "जो घर फूँके आपना वो चले हमारे साथ।" सामनेवाले मकान से दास कबीर का एक शिष्य बाहर आया। बोला, "मैं चलता हूँ गुरु, मगर घर फूँकने पर क्यों ज़ोर देते हो? इसे किराए पर उठा देते हैं। थोड़ी मँथली इन्कम हो जाएगी तो गुरु-चेला दोनों का काम चलेगा।"

(जादू की सरकार से साभार) चकमक

प्यारे भाई रामसहाय

(पेज 9 का शेष भाग)

लेकिन घरवाले अब ये पैसे लेने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें लगा पैसे लौटाकर हम छोकरे उनकी बेइज़्ज़ती कर रहे हैं। "खिला दिया तो खिला दिया। आगे से ऐसा मत करना। बड़े आए पैसे लौटाने वाले! हमारी कोई इज़्ज़त नहीं है क्या?" यही कहा उन्होंने।

और पण्डित हमें यह बताते-बताते रोने लगा। हमने उसे चुप कराया और कहा कि घरवाले तो सबके ऐसे ही होते हैं। घरवालों की बात का बुरा नहीं मानना चाहिए। हम उसे हँसाने की कोशिश करने लगे।

वह भावुक होकर बोला, "तुम लोगों का ऐसा ही सपोर्ट मिलता रहा ....."

".....तो मैं एक दिन इस देश का प्रधानमंत्री बन जाऊँगा।" जक्कू ने उसका वाक्य पूरा किया। सब ठहाका मारकर हँस पड़े।

प्रधानमंत्री तो नहीं, आगे चलकर पण्डित हमारे शहर की नगर पालिका का अध्यक्ष ज़रूर बन गया।

पता चला तो मैं बहुत उछाह से उससे मिलने गया था।

लेकिन अफसोस कि अब उसे न बचपन की यह घटना याद थी, न बचपन के दोस्त !

शायद कुर्सी पर बैठते ही लोगों को कुछ हो जाता है। चकमक

दिसंबर की चित्र पहेली हल

सि	पा	ही		चा		र	सी	द
क्का		रा	त	रा	नी			र्जि
	सौं		स्वी		ल	ह	सु	न
म	फ	ल	र		गि		रा	
हु		क		डो	री		ख	त
आ		ड़		सा		द		ल
	कु	हा	सा		बे	ल		वा
ब	क	रा		शा		द	रा	र
स	र		द	म	क	ल		

बाघ नबीबख्श

पिछले अंक की चित्रकार नबीबख्श मंसूरी की कहानी याद है न! हमने उनकी बनाई बाघ श्रृंखला के चित्र देखे थे। ये भी बताया था कि उन्होंने ये सीरिज़ क्यों बनाई। हमारे आग्रह पर तुमने भी अपने-अपने प्रिय जीवों के चित्र बनाकर भेजे, कविताएँ लिखीं, कहानियाँ लिखीं। उनमें से कुछेक यहाँ पेश हैं।

एक दिन मेरी रोटी बच गई थी। और खाने का मन नहीं कर रहा था। तब मैंने रोटी एक कुत्ते को दे दी। वह कुत्ता हर रोज़ रोटी लेने आने लगा। इस तरह हम दोस्त बन गए।

– पवित कौर, पाँचवीं, डीपीएस लुधियाना

मैं, मेरा छोटा भाई प्रियान्श मेरे पापा-मम्मी हम सब अपनी प्यारी बछड़ी जीया से बहुत प्यार करते थे। जीया काले रंग की सुन्दर बछड़ी थी। हम उसे रोज़ किस करते थे। उसे रोज़ सहलाते, अपने हाथों से हरी घास देते, पिंडा और पानी पिलाते थे। वह "अम्मा-अम्मा" बोलती तो उसकी आवाज़ बहुत सुन्दर लगती थी। जब आवाज़ में थोड़ा बदलाव आता तो हम समझ जाते के उसे किसी चीज़ की ज़रूरत है। हम उसे वह दे देते, फिर वह खुशी से अपनी पूँछ हिलाती। जब हम स्कूल जाते, ट्यूशन जाते, कहीं भी जाते तब वह दुखी आवाज़ में "अम्मा-अम्मा" करती। वह दूर से खुशबू पहचानकर "अम्मा-अम्मा" कहकर अपनी पूँछ हिलाती। वे ऐसे अपना प्यार दिखाती थी।

अब वह नहीं रही।

जिस दिन मेरी मम्मी का पाँव पत्थर से फिसला और मेरी मम्मी को थोड़ी चोट आई उसी दिन शाम को चार बजे जीया पहाड़ से गिर गई। हम अब भी उसे बहुत याद करते हैं। उसे बहुत मिस करते हैं। हम अब भी उसे बहुत प्यार करते हैं।

– प्रियान्शी राणा, सातवीं, ग्राम-सेकु, गुँज संस्था, उत्तराखण्ड

– नन्दिनी गुप्ता, पाँचवीं, डीपीएस लुधियाना

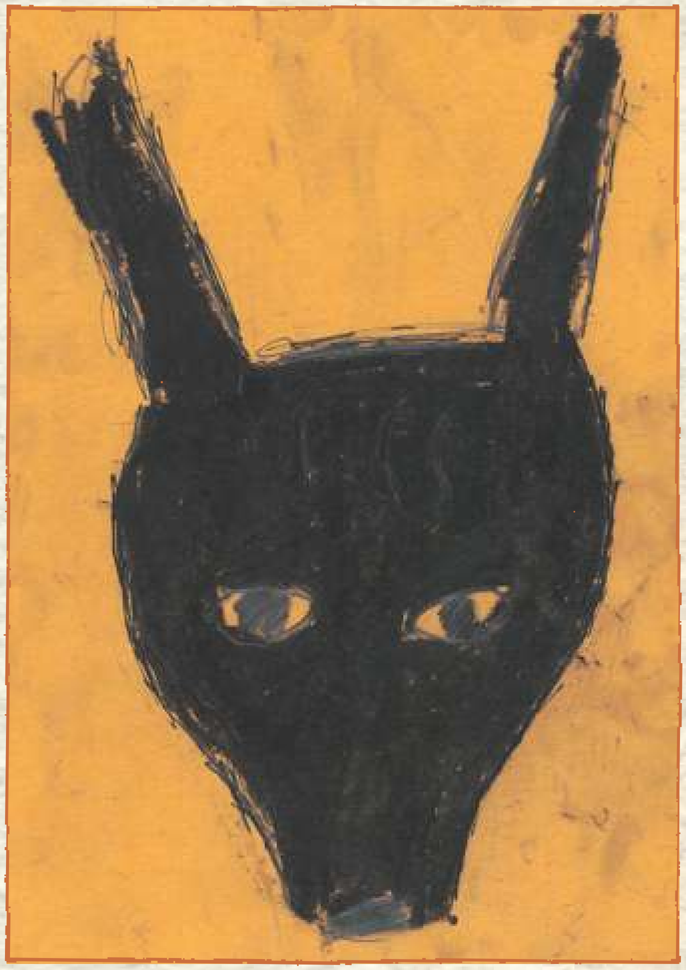

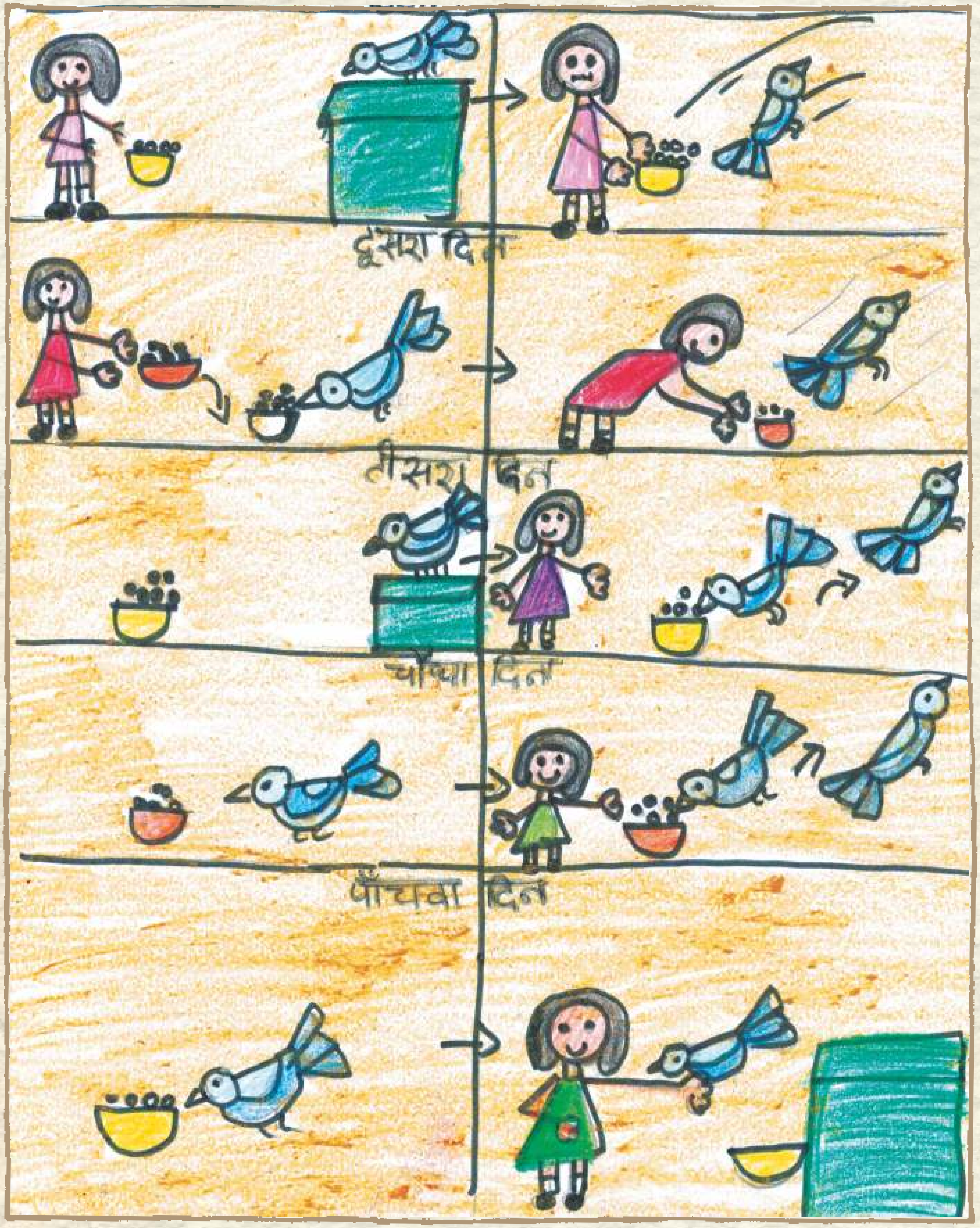

– जयस्वी सिंह, पाँचवीं, डीपीएस पटना

- सताक्षी, चौथी, डीपीएस पुणे

कुछ दिनों पहले मैं सुबह पक्षियों को दाना डालने अपने घर की छत पर गया था। वहाँ जब मैं दाना डाल रहा था। तब एक बड़ा-सा तीन पूँछोंवाला पक्षी वहाँ से गुज़रा और एक बड़े पेड़ पर बैठकर मुझे घूरने लगा। मैंने उसकी तरफ कुछ दाने रखे और फिर अन्दर की खिड़की से जाकर उसे देखने लगा। वह सारे दाने उठाकर मेरे घर के पीछे चली गई। मैं यह देखकर हैरान हो गया कि उसका घोंसला मेरे घर के पीछे था। अब वह मेरी दोस्त है और मैं उसके घोंसले में हर दिन दाना डालकर आता हूँ।

– साकेत गुप्ता, चौथी, डीपीएस लुधियाना

प्यारी बुलबुल

बड़े सवेरे बुलबुल आती
छुप क्यारी में गाना गाती,
कहती मुझको दे दो दाना
जल्दी मुझको वापस जाना।

छोटे-छोटे बच्चे मेरे
उठ जाते हैं बड़े सवेरे,
चूँ-चूँ-चूँ-चूँ करते होंगे
वे आपस में लड़ते होंगे।

दाना उन्हें खिलाऊँगी मैं
उड़ना उन्हें सिखाऊँगी मैं,
फिर वे उड़कर आएँगे सब
चूँ-चूँ, चिक-चिक गाएँगे तब।

प्रस्तुति - कृतिका व्यास, पाँचवीं, डीपीएस पुणे

बुलबुल और बिल्ली

यह एक दिन की बात है। जब मैं स्कूल से आई थी तब मुझे एक बिल्ली के चलने की आवाज़ आई। फिर मैंने खिड़की के बाहर देखा, तो मुझे एक बिल्ली दिखी जिसके पीछे उसके दो बच्चे थे। कुछ देर बाद उसकी नज़र बुलबुल के एक बच्चे पर गई। वह बिल्ली तेज़ी से उसके पास गई और चिल्लाने लगी "म्याऊँ-म्याऊँ"। फिर उसने आपने बच्चे को चाटा, फिर वह भागी और एक पत्थर पर रखा रोटी का टुकड़ा लाई और उस बच्चे को खिलाया। जल्दी ही उस बच्चे की माँ आई और उसे लगा कि वह बिल्ली उसके बच्चे को मार रही है। तो वह जब उसे टोचने गई तो देखा उसके मुँह में रोटी का टुकड़ा था। उसने सोचा कि वह खिला रही होगी फिर वह अपने बच्चे को लेकर उड़ गई। कुछ दिन बीत गए। फिर मैंने उन्हें और एक बार देखा, तब वह बिल्ली खाना लेकर आई थी। तब मुझे लगा कि वह दोस्त बन गए थे।

– यशविनी नसारे, पाँचवीं, डीपीएस पुणे

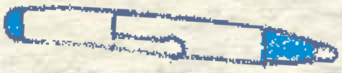

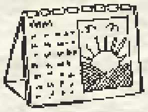

बाघ नबीबख्श

- क्रिश हेगड़े, चौथी डीपीएस पुणे

मेरा पालतू डॉग

मेरा पालतू डॉग सफेद रंग का था। वह अच्छा था। उसे नॉनवेज पसन्द था। वह बहुत तेज़ भागता था। उसका नाम जिम्मी था। बहुत दिनों से वह बीमार था तो उसे डॉक्टर के पास ले गए। तो डॉक्टर ने कहा कि ये अब मरनेवाला है। तो इसे घर ले जाओ और ज़हर का इन्जेक्शन लगा देना। तो फिर उसे घर ले गए। जब उसे घर ले गए तो वो मर गया।

- मिहिर सिंह, पाँचवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल (म.प्र.)

कैनवस के जूते और रातरानी...

(पेज 18 का शेष भाग)

खाँसी आ गई। बुढ़िया खाँसते-खाँसते उठी और पानी लेने के लिए बढ़ी। घड़े से पानी लेकर पलटी तो बूढ़ा पेट पकड़े हुए था। कहने लगा, "अरे राम! आज हँसते-हँसते जान निकल जाएगी।"

बुढ़िया ने पानी का गिलास थमाते हुए कहा, "एक नम्बर का चालू बच्चा है। जिस दिन आलू-मैथी लेकर आता है, तो कहता है कि दादी जी आप मेरा खाना खा लीजिए। आप भी भूखी होंगी। एक दिन मैंने कहा कि जिस दिन मैगी लेकर आना उस दिन खिलाना, तो कहने लगा कि मम्मी कहती हैं कि मैगी मैदे से बनती है। मुश्किल से हज़म होती है, इसलिए आप मत खाना। आलू-मेथी बूढ़े लोग के लिए अच्छी होती है, वो खाया करो।" और फिर हँसते-हँसते भाग गया।

"अब तुम बताओ कि तुम क्या सोच रही थीं?"

"छोड़ो..."

"अरे बताओ न!"

"नहीं तुम हँसोगे। और फिर खाँसने लगोगे।"

"अरे बाबा, बताओ तो। नहीं हँसूँगा।"

"अब हँसोगे नहीं तो हँसी की बात बताने का फायदा ही क्या?"

"अरे बोलो भी!" बूढ़े ने चिढ़ते हुए कहा।

"मैं सोच रही थी कि उन बच्चों के जूते पर रातरानी के फूल कौन बनाएगा?"

"ये भी कोई हँसने की बात है भला?"

"मुझे लगा कि तुम हँसोगे कि साठ साल की ये बुढ़िया कैसे बच्चों जैसी बातें करती है।"

बूढ़ा लेट गया। थोड़ी देर बाद बुढ़िया भी लेट गई लेकिन दोनों को नींद नहीं आ रही थी। दोनों करवट बदल-बदलकर देख रहे थे कि शायद दूसरी करवट अच्छी नींद आती हो! लेकिन आज दोनों करवट नींद नहीं आ रही थी। बूढ़ा फिर से लेटे-लेटे खिड़की से बाहर झाँकने लगा।

"अच्छा, खिड़की बन्द कर दो बुढ़िया।"

"अरे, बन्द तो है।"

"नहीं, थोड़ी-सी खुली है।"

"तो?"

"चन्द्रमा स्कूल में टँगे पीतल के घण्टे की तरह लगा रहा है। रोशनी चाहिए तो बिजली का बल्ब जला लो।"

मेरा पन्ना

–स्नेहा मैती, दूसरी,
बोरबिल, उड़ीसा

मछली

मैं जब छोटी थी तब मेरी मम्मी-पापा ने मेरे और मेरी दीदी के लिए एक मछली का पॉट लाया था। एक दिन एक मछली मर गई। मेरे घर में टोटल दस मछलियाँ हैं। एक दिन एक और मछली मर गई। ऐसे करते-करते सारी मछलियाँ मर गईं। आखरी में एक ही मछली बच गई। जब एक मछली बची तब मैं नर्सरी में थी। दो -तीन दिन में वो आखरी मछली भी मर गई। जब मैं बहुत ज़ोर से रोई। तब मेरे पापा ने मुझे चॉकलेट दी। तब मैं खुश हो गई।

–सन्तुष्टि बावसकर, तीसरी,
केन्द्रीय विद्यालय देवास म. प्र.

मदारी

एक गाँव था। उसमें एक मदारी रहता था। वह मदारी हर गाँव में जाकर खेल दिखाता था। उसका खेल इतना अच्छा था कि बच्चों को उसके आने का इन्तज़ार रहता था। एक दिन मदारी खेल दिखाने नहीं आया। तो गाँव के बच्चे चिन्ता में पड़ गए। बच्चों के साथ उनके माता-पिता भी परेशान हो गए। बच्चों ने चिल्ला-चिल्लाकर उनका हाल बेहाल कर दिया। परेशान होकर गाँववाले मदारी के पास गए। और बोले, "कैसे हो? तुम खेल दिखाने क्यों नहीं आए?" मदारी ने कहा, "मेरा बच्चा बीमार है और मेरे पास पैसे भी नहीं है।" मदारी से गाँववालों ने कहा, "पैसे हम देंगे। तुम बच्चे का इलाज करवाओ।" गाँववाले मदारी के बच्चे को अस्पताल ले गए। मदारी का बच्चा कुछ दिनों बाद ठीक हो गया। तो मदारी ने गाँव-गाँव जाकर खेल दिखाना शुरू कर दिया। मदारी के आने से वे बच्चे बहुत खुश हुए। वहीं बच्चों को देखकर गाँववाले भी खुश हुए।

–रोशन, 13 वर्ष,
कटार फरिया, सवाई माधोपुर, राजस्थान

बोलीरंगोली

दो पैसे में धूप का ताप
चार आने की बारिश
मैं मौसम बेचता हूँ...
मैं मौसम बेचता हूँ।

गुलज़ार

गुलज़ार साब की इस कविता पर तुम्हारे सैकड़ों चित्र मिले। गुलज़ार साब के पसन्दीदा छह चित्र यहाँ पेश हैं। इन्हें भेजने वाले चित्रकारों को उपहार में चकमक डायरी अथवा किताबें भेजी जा रही हैं।

- साक्षी प्रिया, छठी,
बाल भवन किलकारी,
भागलपुर (बिहार)

- दीपाली हलदर, सातवीं,
आनन्द विहार स्कूल,
भोपाल

- दिशिता जी. उत्तमचन्दानी, सातवीं,
डीपीएस पुणे

दो पैसे में धूप का ताप
चार आने की बारिश
मैं मौसम बेचता हूँ...
मैं मौसम बेचता हूँ।

- गुलज़ार

- प्रकृति जैन, बारहवीं,
सृजना एकेडमी, भोपाल

- सलोनी शर्मा, अठराह साल,
सृजना एकेडमी, भोपाल

– हिमान्शु, दसवीं, डीपीएस पटना

बोलीरंगोली

जनवरी की कविता सुनो –
वक्त काटना क्या मुश्किल है?
एक घण्टे को आधा कर के,
उसको फिर से आधा कर लो तो...
पन्द्रह मिनट हैं।
पन्द्रह मिनट को तीन हिस्सों में काटो
पाँच मिनट के तीन हिस्से बचते हैं...
पाँच के काटो तीन और दो
दो के फिर दो...
एक बचेगा
वक्त काटना क्या मुश्किल है?
– गुलज़ार

– मुस्कान शेख, सातवीं,
आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 14 जनवरी 2017 तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

पता है –
चकमक, एकलव्य,
ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल -16 (फोन - 09425010115)
चाहो तो ईमेल कर दो chakmak@eklavya.in

– तनिषा पाटिल, पाँचवीं,
डीपीएस पुणे

- कृष हेगड़े, चौथी, डीपीएस पटना

- मिथुन कार्तिकेयन, आठवीं, डीपीएस, कोयम्बत्तूर

- जयशा अरोरा, चौथी,
डीपीएस लुधियाना

बोली रंगोली

दो पैसे में धूप का ताप
चार आने की बारिश
मैं मौसम बेचता हूँ...
मैं मौसम बेचता हूँ।

- गुलज़ार

- रेवा टंडन, चौथी,
डीपीएस पुणे

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयंप्रकाश

एक दिन नाजी सर का पढ़ाने का मूड नहीं था। रात को देर तक ताश खेलते रहे थे। नींद पूरी हुई नहीं थी। लेकिन स्कूल आना ज़रूरी था, सो आ तो गए थे। लेकिन पढ़ाने का बिलकुल मन नहीं हो रहा था।

नाजी सर क्लास में आए। टोपी उतारकर मेज़ पर रखी, टेबल पर पाँव पसारे और बच्चों से कहा, "चलो, निबन्ध लिखो।"

बच्चों ने कहा, "सर, विषय तो बताइए।"

नाजी सर बोले, "ठीक है। टोपी पर निबन्ध लिखो।"

बच्चे निबन्ध लिखने लगे।

नाजी सर सो गए और थोड़ी देर में खर्राटे भरने लगे।

कुछ देर बाद उन्हें लगा कि जैसे उन्हें कोई बाँह पकड़कर जगा रहा है।

आँख खोलकर देखा तो पाया कि एक छोटा बच्चा हाजी सचमुच उन्हें बाँह पकड़कर जगा रहा था।

"क्या है?" नाजी सर गुस्से से बोले।

हाजी ने मासूमियत से पूछा, "सर, मैली-कुचैली कैसे लिखेंगे?"

हाजी और नाजी फुरसत में थे। अपनी आदत के मुताबिक नाजी अपनी बहादुरी के किस्से सुना रहे थे।

तभी हाजी ने पूछा, "ये सब तो ठीक है यार, पर ये बताओ कि मान लो तुम किसी जंगल से जा रहे हो, और अचानक तुम्हारे सामने शेर आ जाए तो तुम क्या करोगे?"

नाजी बोले, "मैं अपनी टॉर्च जला लूँगा। सुना है शेर आग से डरता है!"

हाजी ने कहा, "लेकिन मान लो तुम्हारे पास टॉर्च नहीं है, फिर तुम क्या करोगे?"

नाजी बोले, "मैं पेड़ पर चढ़ जाऊँगा।"

हाजी ने पूछा, "और अगर आसपास कोई पेड़ भी न हुआ तो?"

नाजी बोले, "तो मैं पानी में कूद जाऊँगा।"

हाजी ने कहा, "और अगर आसपास पानी भी नहीं हुआ तो?"

नाजी पहलू बदलकर बोले, "यार! एक बात बताओ! तुम शेर की तरफ हो या मेरी तरफ??"

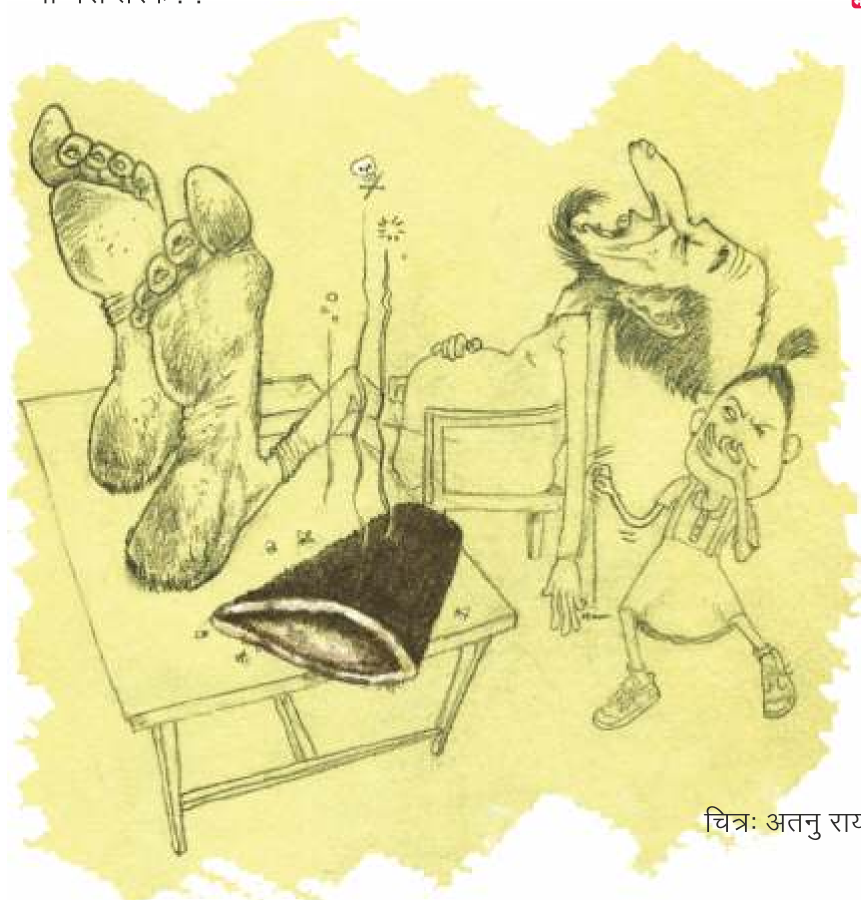

चित्रः अतनु राय

कहाँ से आते हैं जूते?

(पेज 5 का शेष भाग)

कुल मिलाकर पता यह चला कि सभी प्रसिद्ध जूता कम्पनियों के जूते इन्हीं सब जगहों में बनते हैं। सब जूतों में कोई भी अन्तर नहीं रहता। अन्तर है तो बस नामों की चिप्पी का – ब्राण्ड नेम का। इन लगभग एक-से जूतों पर बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अपने-अपने कीमती ठप्पे लगा देती हैं।

जूते की यह यात्रा अपने पहले कदम से आखिर तक पशुओं को क्रूरता से मारती है, पर्यावरण नष्ट करती है, बनाने वालों का स्वास्थ्य खराब करती है, तो कहीं आसपास की भारी ऊर्जा खा जाती है। जूते के तैयार हो जाने के बाद भी यह यात्रा खत्म नहीं होती।

तैयार जूते को बहुत ही हल्के टिशू पेपर में लपेटना बाकी है। इस विशेष कागज़ को सुमात्रा के वर्षा वनों में उगने वाले कुछ खास पेड़ों को काटकर बनाया जाता है। पहले तो जूते का डिब्बा भी ताज़े गत्ते से बनता था। अब कई जूता कम्पनियों को पर्यावरण बचाने की सुध आ गई है! ये डिब्बे पुराने कागज़ों को रिसाइकल कर बनाए जाते हैं।

एक जूते की इस विचित्र यात्रा में कुल तीन सप्ताह का समय लगता है। अब कोई यह न पूछे कि ऐसे विचित्र ढंग से तैयार होने वाले, पूरी दुनिया का चक्कर काटकर बनने वाले जूतों को पहनकर लोग कितना पैदल चलते हैं?

जूतों का यह किस्सा किसी देश विशेष का नहीं है। जो हाल अमरीका का है, वही कनाडा, इंग्लैण्ड, ऑस्ट्रेलिया और यूरोप – सब जगह का है।

यदि हम नहीं सम्भले तो हमारा हाल भी ऐसा ही होने जा रहा है। हमें भी जूते इसी भाव पड़ेंगे।

हेज़ल

ऋषव हलदर

जब मैं सिर्फ आठ साल का था, मेरे परिवार में कोई और आया। मैं बहुत उत्साहित था। मैं स्कूल से लौटा तो मेरे सामने एक छोटा-सा प्यारा कुत्ता था। उसे देखते ही मुझे उससे लगाव हो गया। शुरू-शुरू में जब मैं उसे छूने जाता तब वह घबरा जाता था लेकिन धीरे-धीरे वह मेरे साथ शान्त हो गया। वह मुझे बहुत प्यार करता था और मैं भी। मैं रोज़ उसे नीचे ले जाता था और खेलता था। मैंने उसका नाम रखा था – हेज़ल।

एक दिन करीब चार महीने बाद मैं उसे नीचे वॉक के लिए ले गया था। हर रोज़ के तरह हम इधर-उधर भाग रहे थे, खेल-खूद रहे थे। अचानक वह गुम गया। मुझे तो पता नहीं था तो मैं उससे छुप रहा था पर वह उधर था ही नहीं। मैं घबरा गया और इधर-उधर उसका नाम चिल्लाते हुए भाग रहा था। वह कहीं भी नहीं मिल रहा था। मैंने पूरा पार्क और बाहर के रास्ते में ढूँढा। हर जगह ढूँढा पर वह कहीं नहीं मिला। मैं उदास होकर रोने लगा और भागते-भागते घर पहुँचा। मैं सोच रहा था कि मैं अपने माता-पिता से क्या कहूँ। क्योंकि वह भी उससे बहुत प्यार करते थे। मैं घर गया और रोते हुए माँ की गोद में गिर पड़ा। पर कुछ बोलने के पहले ही मैंने भौंकने की आवाज़ सुनी। मैंने जल्द से देखा कि हेज़ल घर पे लौट आया था। मैं खुश हो गया था। मेरे पास कोई जवाब नहीं था जब माँ ने पूछा कि मैं क्यों रो रहा था।

तब से मैं हमेशा उस का ध्यान रखता था। एक दिन वह बीमार पड़ गया और बेहोश हो गया। मैं डर गया और जल्द से डॉक्टर को बुलाया। उसने बोला

कि उसे कोई बीमारी हुई है जिसके कारण वह बेहोश हुआ था। डॉक्टर ने हेज़ल को एक दवा दी। दो दिन में उसके पास सारी जोश आ गई। हम सब रोज़ एक साथ खेलते। लेकिन एक दिन फिर से वह बेहोश हो गया और फिर हम सब घबरा गए। इस बार डॉक्टर का जवाब अच्छा नहीं था उसे एक बीमारी हुई थी जिसे ठीक नहीं किया जा सकता है। डॉक्टर ने कहा था कि उसे यह बीमारी प्रदूषण और प्रदूषित पानी पीने से हुई थी। मेरे माता-पिता और मेरी दिल की धड़कन रुक गई। हम चुपचाप उदास चेहरे लिए बैठ गए। हेज़ल के पास सिर्फ तीन महीने थे। जब हेज़ल खुशी-खुशी बाहर आया तो हम सब ने अपना बुरा चेहरा ठीक किया और घर चले आए। उस रात खाना खाने के बाद हेज़ल मेरे साथ ही सोया। मैं पूरी रात उसके बारे में सोचता रहा था। जब वह पहली बार आया था, हमारी दोस्ती, हमारा भोलापन और हमारी शैतानियाँ। मैं अब उसके बिना सो भी नहीं पाता और अपना जीवन उसके बिना तो सोच भी नहीं सकता।

दो महीने हो गए थे और उसके सेहत बिगड़ी जा रही थी। वह अब धीरे-धीरे चलता था और आधे से ज़्यादा चीज़ें सुन भी नहीं पाता थां। मुझे उसे देखकर दया आती और स्कूल जाने से पहले रोज़ मैं उसे ज़ोर-से गले मिलता। उसके साथ हर एक पल महत्व का है और मैं उसे अपने साथ हमेशा के लिए रखूँगा। उसने अपनी आखिरी साँस दो दिन बाद ली। हम सब रो पड़े और मिलकर उसके लिए प्रार्थना की।

हेज़ल हमारे ज़िन्दगी का एक हिस्सा था। हम सब उससे प्यार करते थे। मुझे अब तक उसकी सारी बातें याद हैं। उसकी जगह कोई नहीं ले सकता। मेरा उसकी तरफ लगाव नहीं बदलेगा।

- ऋषव हलदर, आठवीं, डीपीएस इन्टरनेशनल एज, गुड़गाँव

चित्रः दिलीप चिंचालकर

कन्फेशन बॉक्स

प्रियंवद

चर्च में अँधेरा उतर रहा था। पादरी हेबर ने लाल-नीले रंग का लैम्प जला लिया। तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई।

नदी किनारे का यह चर्च शहर का सबसे पुराना और बड़ा चर्च था। शहर के सबसे पहले अस्पताल और कब्रिस्तान के पास बना हुआ। हिन्दुस्तान और शहर में शुरू में आनेवाले अँग्रेज़ों की कब्रें यहाँ थीं। पर ये सब पुरानी बातें थीं और बहुत पहले शुरू हुई थीं।

वो सन् 1600 की आखरी रात के कुछ आखरी घण्टे थे। उसी समय जब नया साल धरती पर उतरने के लिए सज-सँवर रहा था और शेक्सपियर "हैमलेट" लिख रहा था और आगरा के लाल किले में अकबर गहरी नींद सो रहा था, रानी एलिज़ाबेथ ने सामने रखे कागज़ पर शाही मुहर मार दी। इसी के साथ इस मुल्क की किस्मत बदलनेवाली ईस्ट इंडिया कम्पनी का जन्म हो गया। लंदन के कुछ छोटे-मोटे व्यापारियों वाली इस कम्पनी ने, सिर्फ दो सौ सालों के अन्दर हिन्दुस्तान ही नहीं, दुनिया की आबादी के पाँचवें हिस्से को अपने आधीन कर लिया। इंग्लैंड के वे सब आवारा, बेरोज़गार लड़के, जो हिम्मती पर बेकार थे और थोड़े पैसों के लिए कोई भी काम करने को तैयार थे, इस कम्पनी में नौकर हुए। जब तीनों ओर समुद्रों से घिरे हिन्दुस्तान में, पचास साल तक बादशाह रहे अकबर ने कभी समुद्र नहीं देखा था, ये लड़के दुनिया के अनजान, और भयानक समुद्रों को मथने के लिए तैयार थे। वे पूरी दुनिया में फैल गए। हिन्दुस्तान भी आए। उनके साथ चर्च आए, कब्रिस्तान आए, अस्पताल आए, स्कूल आए, अँग्रेज़ी भाषा आई, पादरी आए। हिल स्टेशन, यूनिवर्सिटी, रेल आई। नए शहर, नए कारखाने, नई तरह के घर बने। हज़ारों हिन्दुस्तानियों ने इस कम्पनी में नौकरी की। हज़ारों हिन्दुस्तानियों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया। दो सौ साल पहले, इन्हीं में एक, लखनऊ के नवाब के खज़ाने का हिसाब-किताब रखनेवाले हसन भी थे। उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार किया। थोड़ा समय बीतने के बाद वह देश के पहले हिन्दुस्तानी पादरी बने। उनके खानदान के लोगों के बीच यह परम्परा बनी रही। पादरी हेबर उसी की एक कड़ी थे। वह शुरू से इस शहर में थे। शहर के नौ चर्च में उनकी बड़ी इज्ज़त थी। सब मानते थे वह "बिशप" भी बन जाएँगे।

आज़ादी के बाद शहर के लगभग सभी अँग्रेज़ वापस चले गए पर पादरी हेबर के परिवारों से उनका सम्पर्क बना रहा। बाद में उनकी सन्तानों ने पादरी हेबर से सम्पर्क बनाए रखा। लंदन से वे पादरी हेबर से पत्र व्यवहार करते रहते थे। अपने परिवार की कब्रों की देखभाल, मरम्मत, जन्मदिन पर कब्र पर फूल चढ़ाने की ज़िम्मेदारी उन्होंने पादरी हेबर पर छोड़ दी थी। उनकी कुछ पुरानी जायदाद अभी बची थी। उनके मालिक वही थे। पादरी हेबर इन्हें भी देखते थे। इनमें एक नाचघर भी था।

दस्तक फिर हुई। दरवाज़े पर ज़रूर कोई था। लैम्प लेकर पादरी बड़े हॉल के दरवाज़े तक आए। काँच के बाहर एक धुँधली आकृति थी। पादरी ने दरवाज़ा खोला। लैम्प ऊपर उठाया। एक युवती पीली रोशनी के घेरे में आई। खूबसूरत...स्वस्थ। बाहर खम्भे के सहारे उसकी साइकिल खड़ी थी। हाथों में कपड़े में लिपटा छोटा पार्सल था। खुले बालों के बीच उसकी आँखें चमक रही थीं।

"गुड ईवनिंग फादर..." मुस्कराकर उसने सर झुकाया "आपका पार्सल।"

"गुड ईवनिंग..." पादरी हेबर भी मुस्कराए। हाथ बढ़ाकर उन्होंने पार्सल ले लिया। लड़की ने जेब से एक कागज़ निकाला। पेन भी। लालटेन अब लड़की ने पकड़ ली। कागज़ पादरी को दे दिया।

“पहले तो कोई दूसरा आता था।” पादरी हेबर ने कागज़ पर दस्तखत बना दिए। कागज़ लड़की को वापस दे दिया। लड़की ने लालटेन फिर उनके हाथ में दे दी।

“वह मेरे चाचा हैं। उन्हें अचानक बाहर जाना पड़ा। यह लंदन से आया था। मुझे लगा ज़रूरी है इसलिए देने आ गई।”

“गॉड ब्लेस यू।” पादरी मुस्कराए। लड़की घूम गई। दो सीढ़ियाँ उतरकर साइकिल की तरफ जाने लगी। फिर अचानक रुकी। घूमी। पादरी अभी खड़े थे। वह फिर उनके पास आ गई। कुछ क्षण उसने पादरी को देखा। अब उसके चेहरे पर चमक नहीं थी। हल्की उदासी थी। वैसी मटमैली, जैसी बाहर दिन खत्म होने और रात शुरू होने के बीच फैली थी।

“जो आपके धर्म का नहीं है क्या वह भी यहाँ कन्फेशन कर सकता है?” फुसफुसाते हुए पूछा उसने। पादरी हेबर ने कुछ क्षण उसे देखा।

“हाँ, परम पिता का घर अपनी सब सन्तानों के लिए खुला है।”

“क्या आप मेरे कन्फेसर बनेंगे?”

“हाँ।”

“मैं कन्फेस करना चाहती हूँ।” अब उदासी की दहलीज़ पार करके वह दुखी दिखने लगी थी। उसकी आवाज़ धीमी होती हुई टूट रही थी। लालटेन की पीली रोशनी में उसके होठ काँप रहे थे।

“बिजली नहीं है...” पादरी ने घूमकर अन्दर हॉल में देखा। हॉल हलके अँधेरे में था। “पर तुम चाहो तो कन्फेस कर सकती हो। क्या अभी करना चाहोगी?”

“हाँ।”

काँच के बाहर एक धुँधली आकृति थी। एक युवती रोशनी के घेरे में आई। खुले बालों के बीच उसकी आँखें चमक रही थीं।

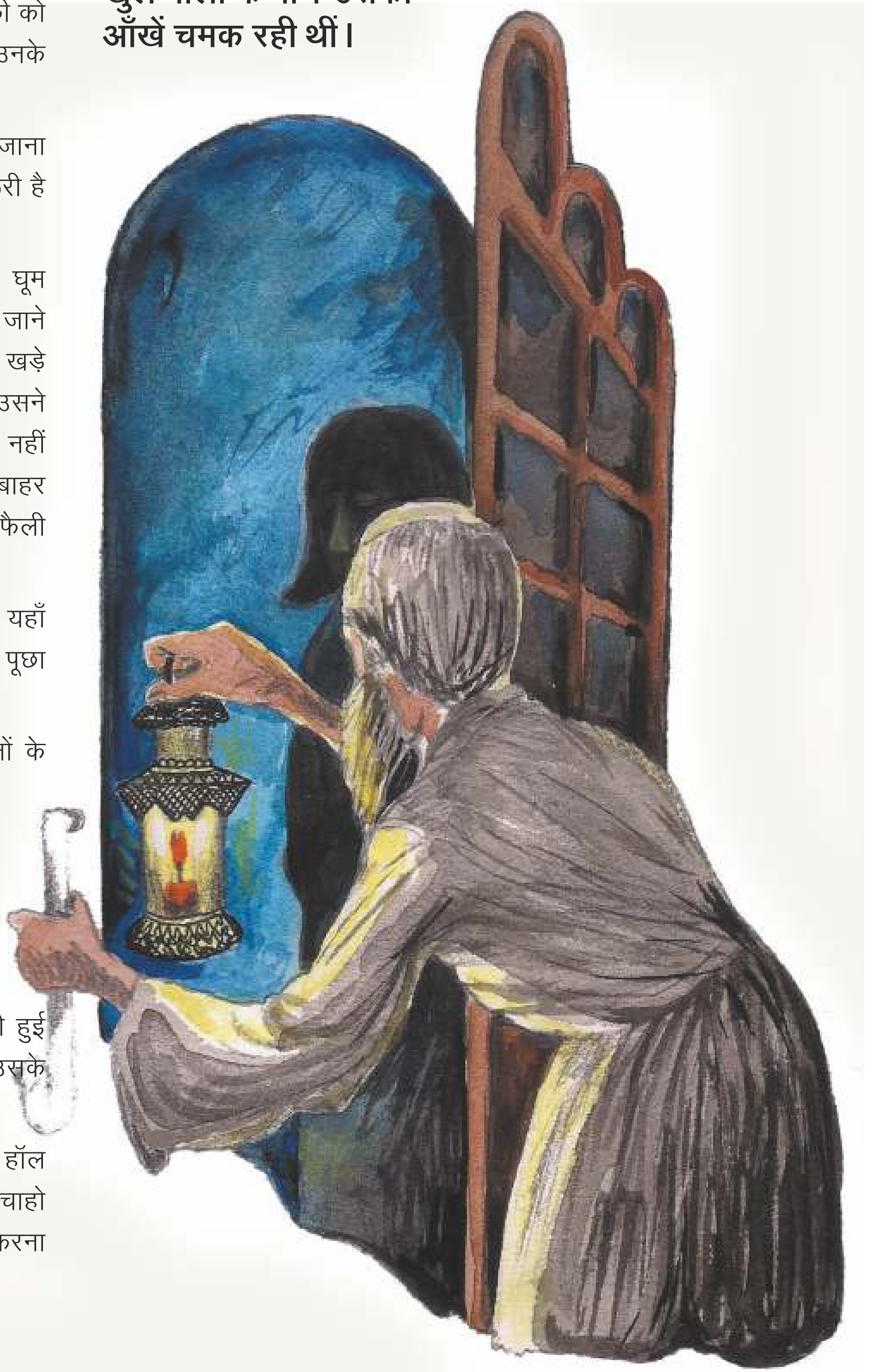

चित्रः प्रशान्त सोनी

"तुम अपने को छुपाकर भी कन्फेस कर सकती थीं।"

"छुपाने की ज़रूरत नहीं थी।"

"आओ।" पादरी हेबर दरवाज़े के एक ओर हट गए। लड़की अन्दर आ गई। पीछे पादरी हेबर आए। उन्होंने दरवाज़े के पास मेज़ पर पार्सल रख दिया। दरवाज़ा बन्द कर दिया।

"उधर।" पादरी हेबर ने कोने में बने छोटे चैपल की ओर इशारा किया। वहाँ एक ओर महीन जाली से बुना आबनूस की लकड़ी का बड़ा और ऊँचा बक्सा रखा था। इतना बड़ा कि व्यक्ति उसके अन्दर आराम से बैठ सकता था। उसके तीनों ओर जालियाँ थीं। सामने की तरफ दो पल्लों का दरवाज़ा था। कन्फेस करनेवाला उससे अन्दर जाता था। वहाँ स्टूल पर बैठता था। उसके सामनेवाली जाली के पीछे कुर्सी रखी थी। उस पर बैठकर पादरी उसका वह पाप या अपराध सुनता था जो वह स्वीकार करना चाहता था। जाली की बुनावट घनी थी। बक्सा अँधेरे में रहता था, जिससे कि कन्फेस करनेवाले का चेहरा साफ न दिख सके। सिर्फ आवाज़ सुनाई दे।

"तुम चलो...मैं कपड़े बदलकर आता हूँ।" पादरी हेबर ने कन्फेशन बॉक्स की तरफ इशारा किया। लड़की सर झुकाकर उधर चली गई। पादरी हेबर पीछे आए। उन्होंने लालटेन बक्से के पास बनी वेदी की मेज़ पर रख दी। वहाँ से अन्दर एक कमरे में गए। वहाँ पहले से एक लालटेन जल रही थी। लौटे तो पादरी की पूरी पोशाक में थे। हाथ में छोटी बाइबिल थी।

"आओ।" उन्होंने लड़की से कहा। वे बक्से के पीछे रखी कुर्सी पर बैठ गए। लड़की दरवाज़े से अन्दर गई। बक्से का दरवाज़ा उसने अन्दर से बन्द कर दिया। स्कूल पर बैठ गई। अब दोनों के चेहरों के बीच बहुत महीन जाली, बहुत हलका अँधेरा, बहुत पीली रोशनी थी। चर्च की पवित्र शान्ति और लोबान के

उस मुस्कान में कितना रहस्य था, कितनी करुणा और ममता थी। बिलकुल मोना लिसा की मुस्कान की तरह।

धुएँ जैसी एक गन्ध थी। ऊपर दीवारों पर बने सन्त उन्हें देख रहे थे।

"फादर... मैं अपना पाप स्वीकार करना चाहती हूँ।" वह बोली। उसकी आवाज़ गूँजी।

"डरो मत मेरी बच्ची... तुम अब परम पिता की शरण में हो। वह सब जानता है।"

"मैं बहुत दिन से सोच रही थी पर डर रही थी कि मैं ऐसा कर सकती हूँ या नहीं। सच तो यह है फादर की पार्सल देने के बहाने मैं यही पूछने आई थी कि क्या आप मेरे कन्फेसर बनेंगे? आपने कृपा की।"

"अपने मन का बोझ कम करो।" पादरी हेबर बुदबुदाए।

"फादर...एक महीना पहले मेरे पिता की मृत्यु हुई। वह डिमेन्शिया के मरीज़ थे। बहुत दिनों से बीमार थे। सहारे से थोड़ा बहुत चल लेते थे वरना बिस्तर पर ही लेटे रहते थे। उनकी देखभाल के लिए मैं उनकी अकेली सन्तान थी। दिन में नौकरी करती, शाम को लौटकर खाना बनाती। उनके सब काम करती। वह अजीब हरकतें करते थे। साफ दीवार पर कहते मकड़ी का जाला लगा है, साफ कर दो। मैं कर देती। कुछ देर बाद फिर आवाज़ देते। साफ क्यों नहीं किया? मैं फिर कर देती। तीसरी बार चिल्लाकर बुलाते फिर जाला लग गया है। मैं फिर साफ कर देती। रात को प्यास लगती तो चीखते। मैं नींद से उठ जाती। उनके पास ही रखा पानी उन्हें देती। रात में कई बार पानी माँगते। मैं हर बार पानी देती। कई बार बिना प्यास के माँगते। मेरे देने पर बिस्तर पर गिरा देते या शायद गिर जाता। मैं बिस्तर बदलती। उन्हें लिटाती। फिर सोने की कोशिश करती।" लड़की ने एक गहरी साँस ली। कुछ क्षण चुप रही। फिर बोलने लगी। "कई हफ्तों से ऐसा हो रहा था। मेरी नींद खत्म हो गई थी। शरीर टूट गया था। एक रात उन्होंने पानी माँगा। मैंने दे दिया। कुछ देर बाद फिर माँगा। मैंने दे दिया। थोड़ी देर बाद फिर माँगा। मैंने उन्हें पानी दिया। उन्होंने हाथ में गिलास पकड़ा। गिलास हाथ से छूट गया। उन्होंने फिर पानी देने को कहा। मैंने मना कर दिया। दो बार वह पानी पी चुके थे। उन्हें पानी की कोई ज़रूरत नहीं थी। मेरे मना करने पर कुछ नहीं बोले। कुछ देर मुझे देखते रहे फिर मुस्कराए। बस। फिर चुपचाप उसी गीले बिस्तर पर लेट गए। मैं भी सो गई। सुबह उठी तो वह मर चुके थे।" लड़की एकदम से चुप हो गई। अब वह सुबक रही थी। कुछ देर में उसने खुद को सम्हाल लिया। "उस दिन मुझे लगा मैंने अपने पिता को अन्तिम समय में प्यासा रहने दिया था। शायद वह प्यास से ही मरे। उन्होंने मुझे नहीं उठाया। मैंने उनकी इतनी मामूली-सी आखरी इच्छा भी पूरी नहीं की। उन्हें पानी का आखिरी गिलास भी नहीं दिया। मैं उनकी मौत का कारण बनी। पानी दे देती तो शायद वह बच जाते।" लड़की ने झुरझुरी ली। "और उनकी वह मुस्कान! मेरी आत्मा पर कुण्डली मारकर बैठ गई है... कैसी थी वह! जैसे अन्तिम समय में कोई किसी के सब पाप क्षमा कर रहा हो। जैसे वह जानते थे कि वह मरने वाले हैं... प्यासे...और मुझे क्षमा कर रहे थे। उस मुस्कान में कितना रहस्य था, कितनी करुणा और ममता थी। बिलकुल मोना लिसा की मुस्कान की तरह। उनके साथ मैंने पूरा जीवन बिताया है। पर अब स्मृति में कुछ नहीं बचा है सिवाय उस मुस्कान के। कितनी पवित्र थी! मृत्यु की आहट और मुक्ति की खुशी से मिली-जुली, एक पहेली जैसी मुस्कान। अब हर बार वह मुस्कान मेरे पाप बोध को ज़िन्दा कर देती

अन्दर एक चाबियों का गुच्छा था और एक कागज़।

है कि मैंने उन्हें पानी का आखरी गिलास नहीं पीने दिया। यही मेरा पाप है फादर।" लड़की अब फूट-फूट कर रो रही थी। "मुझे मुक्ति चाहिए।"

पादरी हेबर चुप थे। इस बक्से के पीछे बैठकर उन्होंने सैकड़ों लोगों के मुँह से उनके पाप सुने थे। उस बक्से की जाली का हर कोना ऐसे पापों की कहानियों से भरा था। जैसे दरगाहों में मन्नत के डोरे लटकते हैं, उसी तरह जालियों में लोगों के पाप...दुख...प्रायश्चित लटके थे। मन के, शरीर के, आत्मा के पाप थे। सबको मुक्ति चाहिए थी। दुनिया में ऐसे हज़ारों कन्फेशन बॉक्स थे। लाखों पाप, लाखों दुख उनसे झूल रहे थे। पादरी हेबर ने गहरी साँस ली। पुण्य का, अच्छे कामों का कोई कन्फेशन बॉक्स कभी नहीं बना था।

"तुम खुद कह रही हो वह क्षमा की मुस्कान थी।" लड़की जब रोना बन्द कर चुकी, पादरी हेबर धीरे-से बोले, "पिता ने उसी क्षण तुम्हें क्षमा कर दिया था। इस पाप से मुक्त कर दिया था। उसी तरह जैसे जीवन में हमेशा करते आए थे। माता-पिता से बच्चों का कुछ नहीं छुपा होता। वे सब जानते हैं और हर बात के लिए अपने बच्चों को क्षमा भी कर देते हैं। आओ," पादरी हेबर उठ गए, "तुम मुक्त हो।" लड़की ने चेहरा पोंछा। वह भी उठ गई। घूमकर पादरी हेबर बक्से के दरवाज़े के सामने आए। लड़की बाहर आई। उसने पल्ले बन्द कर दिए। अब उसके चेहरे की शान्ति और चमक लौट आई थी।

"धन्यवाद फादर।" उसने घुटने झुकाए। पादरी की हथेली आँखों से छुआ कर चूम ली। उसकी आँखें अभी लाल और गीली थीं।

"एक वादा करो।" पादरी मुस्काए

"क्या?"

"अब कभी किसी प्यासे को पानी के लिए मना नहीं करोगी।"

फफकती हुई लड़की उनके सीने से चिपक गई।

"चलो...रात हो रही है।" पादरी हेबर ने उसके सर पर हाथ फेरा। लड़की अलग हो गई। पादरी हेबर ने वेदी की मेज़ पर रखी लालटेन उठा ली। दोनों दरवाज़े तक आए। पादरी ने दरवाज़ा खोला। सर्दियों की दस्तक देती हुई हवा बह रही थी। इस हवा में गिरे हुए कत्थई, पीले-भूरे पत्ते कुछ दूर दौड़े। उनकी सूखी नसें चटक गईं। खुदी हुई मिट्टी से धूल का एक गोल बवन्डर उठा। उसके किनारे बैठे परिन्दे चिहुँककर कूदते हुए भाग गए। दरवाज़े के बाहर निकलकर लड़की घूमी। उसने दोनों हाथ जोड़े। उसके होंठ फिर काँप रहे थे। आँखों में फिर पानी आ गया था। ठीक इसी समय कहीं किसी कोयल ने साल की आखरी कूक दी। किसी फूल ने चुपचाप भँवरे को बन्द कर लिया। ठण्डी रात के सफर से बचने के लिए चाँद की बुढ़िया ने चाँद के सर पर पगड़ी रख दी।

"ईश्वर हमेशा तुम्हें देखता रहे।" पादरी ने कहा। लड़की कुछ बुदबुदाई। पलटकर सीढ़ियाँ उतरी। साइकिल उठाई और बिना पादरी की ओर देखे चली गई। अन्दर आकर पादरी हेबर ने दरवाज़ा बन्द कर दिया। मेज़ पर लालटेन रखकर पार्सल उठाया। खोला। अन्दर एक डिब्बे में चाबियों का गुच्छा था और एक कागज़। नाचघर के मालिक ने भेजा था। "काला बच्चा" नाम का एक बड़ा बिल्डर नाचघर खरीदना चाहता है। जब वह चाहे, पादरी हेबर चाभियाँ ले जाकर उसे पूरा नाचघर अच्छी तरह दिखा दें।

जारी...

प्यारी बुलबुल

सुबह-सुबह आती
है नन्ही बुलबुल
अपनी बोली सुनाने
हमारा दिल बहलाने
लगती कितनी चुलबुल
हर दिन जागकर आती है वो
ना सोए ना रोए बस गाए वो
सिर पर एक मुकुट पहनकर
सब पंछियों को चौंकाए वो
हमारी दोस्त बुलबुल

—अल्पना, सेंट फ्रांसिस स्कूल लखनऊ, उ. प्र.

—चिन्नुआ, पूर्णा लर्निंग सेंटर, बैंगलौर, कर्नाटक

शेर और लोमड़ी...

एक जंगल था। वहाँ बहुत से जानवर थे। शेर और लोमड़ी मित्र थे। दोनों शिकार के लिए चले। और उनको वहाँ एक जंगली भैंस मिली। शेर ने धीरे-धीरे जंगली भैंस के पीछे जाकर उसे पकड़ लिया और फिर दोनों खाने लगे। एक दिन शेर गाँव चला गया। लोमड़ी ने सोचा कि आज मैं अकेले ही शिकार करने चली जाती हूँ। और एक तालाब में बहुत जंगली भैंस आ रहे थे। लोमड़ी ने सोचा कि अभी जाती हूँ और एक छलाँग लगाई। और भैंसों के बीच में जाकर गिर गई। भैंसों ने लोमड़ी को सींग से मारा और लोमड़ी घायल हो गई।

—ओमप्रकाश ध्रुव, तीसरी,
अजीमप्रेमजी स्कूल,
धमतरी, छत्तीसगढ़

— आतिफ सुफेल खान, छठी, दिल्ली पुलिस पब्लिक स्कूल, नई दिल्ली

जानवरों का सोना

विनता विश्वनाथन

जानवर कैसे सोते हैं – चकमक के नवम्बर अंक में यह लेख छपा था। इस पर तुम सबके जवाब पढ़े और बहुत मज़ा आया। कुत्ते, गाय, बिल्लियों और कई जंगली जानवरों के सोने के तरीकों के बारे में तुम सब से जाना और समझा। तुममें से कइयों के लिखे हुए को पढ़कर समझ में आया कि कितनी बारीकी से जानवरों के व्यवहार को नोट किया है। और तुम्हारे भेजे चित्र भी बहुत सुन्दर लगे। बस एक-दो बातें कहनी थीं...

तुमने लिखा है कि घर के आसपास के जानवर जैसे सड़क के कुत्ते और गाय बीच सड़क पर बैठते-सोते हैं। ऐसा क्यों करते होंगे? क्या उनको सड़क के किनारे, फुटपाथ पर या फिर किसी पेड़ या दुकान की छाँव में सोने की जगह नहीं मिली है, इसलिए? या फिर क्या लोग उनको किनारे से भगाते रहते हैं, इसलिए? शायद उनको खुले में सोना पसन्द हो, इसलिए...! हमारे एक दोस्त का मानना है कि सड़क अकसर किनारों से ऊँची होती है और चूँकि जानवर ऐसी जगहों पर सुरक्षित महसूस करते हैं वे इन्हें चुनते हैं। साथ में सड़क अन्य जगहों की तुलना में सूखी और गर्म होते है इसलिए खासतौर पर बरसातों में गाय और कुत्ते यहीं टिके रहते हैं।

तुमने लिखा कि जानवरों के बैडरूम-बिस्तर नहीं होते हैं। बैडरूम तो कुछ जानवरों के होते हैं जैसे लोमड़ी और खरगोश जो बिलों में सोते हैं। हाँ, बिस्तर बहुत कम जानवर बनाकर सोते हैं – इनमें चिम्पैन्ज़ी और कुछ गिलहरियाँ शामिल हैं। कीटों के बारे में बहुत कम ने लिखा है। वैसे ये भी सोते हैं – चींटियाँ, मधुमक्खियाँ, मक्खियाँ, तितलियाँ भी। और तो और मनुष्यों की ही तरह अगर मधुमक्खियों और मक्खियों को पर्याप्त नींद नहीं मिलती तो ये लड़खड़ाने लगती हैं।

किसी ने लिख भेजा है कि कुत्ते दिन का काफी समय नींद में बिताते हैं लेकिन वे गहरी नींद नहीं सोते हैं। कुत्ते दूर की आवाज़ या पास आती आहट को सुनते ही जाग जाते हैं, शायद यही देखकर लिखा होगा। सच तो यह है कि कुत्ते गहरी नींद सोते हैं और उनको सपने भी आते हैं! तुम में से कुछ ने हाथियों के बारे में लिखा है कि वे खड़े होकर ही नहीं, लेटकर भी सोते हैं और करवट भी बदलते हैं। यह सही है कि हाथी खड़े होकर झपकी लेते हैं और कुछ घण्टों के लिए लेटकर सोते भी हैं लेकिन ये करवट लेते हैं, यह ज़रूरी नहीं है। हालाँकि कुछ हाथी दाईं तो कुछ बाईं

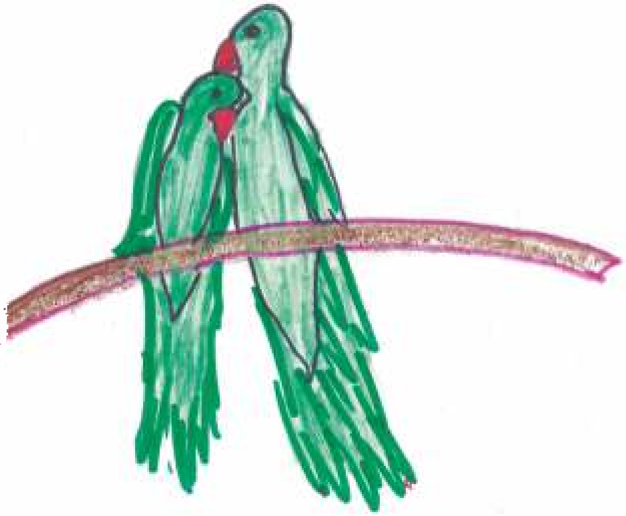

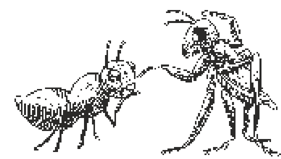

अगमजोत सिंह, चौथी,
डीपीएस पटना

क्या यह सही है कि हाथी खड़े होकर झपकी लेते हैं और कुछ घण्टों के लिए लेटकर सोते भी हैं ?

सौम्या सुहानी, चौथी,
डीपीएस पटना

तरफ सोने के आदी हैं। तुम्हें एक बात बताऊँ - इंसानों की तरह कुत्ते ही नहीं, हाथी भी खर्राटे लेते हैं! और तो और कुत्तों और पालतू हाथियों के मस्तिष्क को जाँचने पर पता चला है कि उन्हें भी उस नींद का अनुभव होता है जिस तरह की नींद में मनुष्य सपने देखते हैं। तो मुमकिन है कि कुत्ते और हाथी भी सपने देखते हों! कैसे सपने देखते होंगे ये जानवर?

चलिए, हाथियों के बारे में कुछ और बातें करते हैं। जंगलों में और वन्यजीव पर काम करने का शौक मुझे कॉलेज में हुआ। मैं अकसर सोचती कि इस प्रजाति पर या उस पर शोध करूँगी। लेकिन एक बात तय थी कि जगह वही होगी जहाँ हाथी न होते हों। मैं हाथियों से बहुत डरती हूँ। मैं नहीं चाहती थी कि किसी पक्षी या हिरण को दूरबीन से देखते समय अचानक मेरी मुलाकात किसी हाथी से हो जाए। अकसर लोग हाथियों को सौम्य विशालकाय जीव (जेंटिल जायन्ट्स) कहते हैं। शायद इसलिए कि चिड़ियाघर या मन्दिरों या शहर-गाँवों में जब हम पालतू हाथी देखते हैं या उन पर सवार होते हैं तो वे हमें काफी शान्त लगते हैं। जबकी सच तो यह है कि इनसे हमें कभी भी खतरा हो सकता है। वयस्क नर हाथी (जो अकसर अकेले या अन्य नरों के साथ घूमते हैं) समय-समय पर टेस्टॉस्टेरॉन हार्मोन के बढ़ने के कारण काफी आक्रामक हो जाते हैं। ऐसे में उनकी कनपटियों से एक द्रव बहने लगता है। जैसे ही मादा को लगता है कि वो खुद, उसके बच्चे या झुण्ड का कोई सदस्य खतरे में है तो गुस्सा जाती है। और खतरे को हटाने के लिए तेज़ी से दौड़ती है। अपनी तरफ चिंघाड़ते हुए, कान फैलाए चार टन का जानवर दौड़ता देखकर कोई भी घबरा जाए। ऐसे में तो बड़े-बड़ों के पाँव जम जाते हैं। मेरे एक दोस्त का मानना था कि ऐसे में जैकेट या कमीज़ उतारकर फेंकने से हाथी उसकी तहकीकात करने रुक जाता है और आपको भागने का मौका मिल जाता है। ज़ाहिर है कि हाथियों पर अपना शोध खत्म करते-करते उसकी कई कमीज़ें हाथियों की भेट चढ़ चुकी थीं। मेरे डर के बावजूद हाथियों का व्यवहार मुझे रोचक लगता है। खासकर उनकी दो बातें।

पहला उनके सम्वाद का तरीका। केटी पेन अमेरिका के ऑरेगॉन के वॉशिंग्टन पार्क ज़ू में काम करती हैं। उन्होंने एशियन एलिफेंट की कभी आवाज़ नहीं सुनी, पर कुछ घरघराहट महसूस की। यह 1984 की बात है। यंत्रों का इस्तेमाल करते हुए पता चला कि ये हाथी बहुत ही कम फ्रीक्वेंसी (आवृत्ति) में भी आवाज़ें निकालते हैं जो मनुष्यों को सुनाई नहीं देतीं। फिर अफ्रीका के मैदानों में रहनेवाले सवाना

वैसे चींटियाँ भी सोती हैं और अगर मधुमक्खियों और मक्खियों को पर्याप्त नींद नहीं मिलती तो ये लड़खड़ाने लगती हैं।

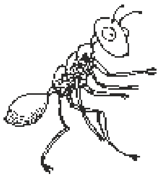

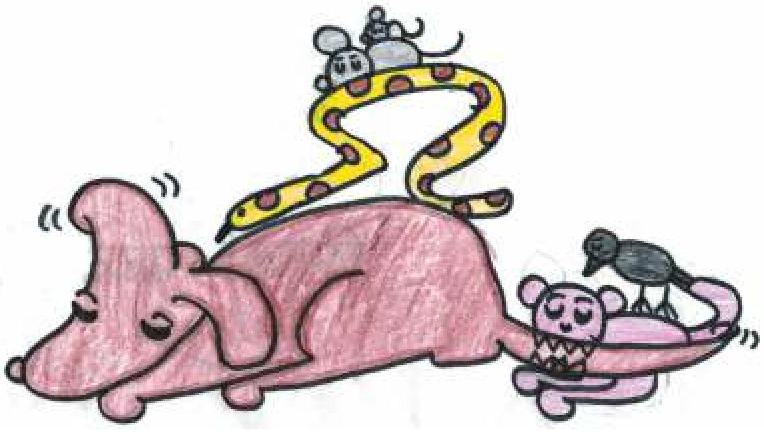

– अनन्या विदूषी, पाँचवीं, डीपीएस पटना

एलीफैंट पर हुए शोध से पता चला है कि इस फ्रीक्वेंसी की आवाज़ें 30 वर्ग किलोमीटर तक सुनाई देती हैं। शाम को जब तापमान बदलता है तो 300 वर्ग किलोमीटर तक इन्हें सुना जा सकता है। यानी हाथी एक-दूसरे से दस किलोमीटर दूर तक भी बातें कर सकते हैं, और यह अनुमान लगा सकते हैं कि दूसरा हाथी कितनी दूरी-से बोल रहा है। शायद इस तरह एक-दूसरे से बातें करते ही नर मादाओं को प्रजनन के लिए ढूँढ लेते हैं और परिवार के बिछड़े हुए सदस्य एक साथ एक ही जगह मिलते हैं। वैसे हाथियों के अलावा इस फ्रीक्वेंसी की आवाजों का इस्तेमाल व्हेल, गैंडा, जिराफ, औकापी, आदि जानवर भी करते हैं। बिल्लियाँ, शेर भी इतनी कम फ्रीक्वेंसी की आवाज़ें निकालते हैं।

हाथियों की दूसरी बात जो मुझे रिझाती है वो है उनकी याददाश्त। इसके बारे में लोग सैंकड़ों सालों से किस्से सुनाते आ रहे हैं। और क्यों नहीं – यह बात ही कुछ ऐसी है। अफ्रीका के सवाना (खुले घास के मैदानों) में पता चला है कि हाथी कहीं भी हों वे हमेशा सबसे नज़दीकवाले पानी के स्रोत तक साधे पहुँच जाते हैं। यानी उनको अपने इलाके के पास-दूर सभी तालाब-झील-झरने याद रहते हैं। देखा गया है कि कभी-कभी तो 50 किलोमीटर की दूरी से ही वो उस तालाब या नदी की दिशा में मुड़कर चलने लगते हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने यह भी देखा है कि अकाल में कुछ हथनियाँ अपने झुण्ड को पानी के उन स्रोतों तक ले जाती हैं जहाँ सालों तक वे गई नहीं थीं – यानी ज़्यादा उम्रवाली अनुभवी हथियाँ अपनी याददाश्त के कारण अपने झुण्ड को कठिन परिस्थितियों से बच निकालने की क्षमता रखती हैं। इतना ही नहीं, उनकी सामाजिक याददाश्त भी अच्छी है। कुछ शोधकर्ताओं ने एक झुण्ड को एक ऐसी हथनी की आवाज़ की रिकॉर्डिंग सुनाई जो उनको 12 साल पहले छोड़कर अन्य समूह के साथ चली गई थी। उसकी आवाज़ सुनते ही झुण्ड की हथनियों ने जवाब दिया। चूँकि हाथी अनजान हाथियों की आवाज़ सुनकर ऐसा नहीं करते हैं, हम मान सकते हैं कि उन्होंने अपने साथी की आवाज़ पहचान ली थी। एक बार दो साल पहले मरे हुए हाथी की आवाज़ की रिकॉर्डिंग बजाने पर झुण्ड के सब हाथी स्पीकर के पास आ गए और ज़ोर-से आवाज़ें करने लगे। हाथी तब ऐसा करते हैं जब उनसे गहरा सम्बन्ध रखनेवाला हाथी मिल जाए।

तुमने हाथियों के बारे में कुछ रोमांचक किस्से सुने हों तो ज़रूर बताना।

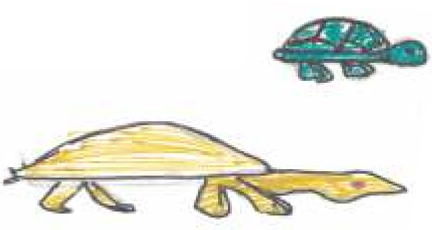

आर्या श्री, पाँचवीं, डीपीएस पटना

मेरा पन्ना

भूखी बिल्ली

मम्मी बिल्ली झाँक रही है।
देखो कैसे ताक रही है।।
भूख लगी है उसे खिला दो।
दूध मलाई उसे पिला दो।।
खा पीकर वह सो जाएगी।
मोटी ताज़ी हो जाएगी।।

– दिव्यांश सिंह, पहली,
सर्वोदय कान्वेन्ट स्कूल नानकमत्ता,
उधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड

खरगोश का शिकार

एक बार मैं अपने काका के गाँव गया। वो गर्मियों के दिन थे। स्कूल की छुट्टियाँ चल रही थीं। मेरे काका और उनके दो बेटों को शिकार की आदत थी। तो हमने शिकार पर जाने का तय किया। मेरी आई मुझे शिकार पर जाने नहीं देना चाहती थी। फिर भी मैं अपने काका के साथ चला गया। काका के दोनों बेटे भी हमारे साथ आए। हम अपने साथ दो शिकारी कुत्ते लेकर गए। और हम शिकार करने के लिए एक जाल भी लेकर गए। हमने शिकार का कुछ और सामान भी अपने साथ रखा जैसे कुल्हाड़ी और तीर-कमान।

हम सुबह जल्दी ही निकल गए थे। जंगल बहुत घना था। हम जंगल में घूमते रहे। हमने वहाँ कई तरह की चिड़ियाँ, जानवर, कीड़े और तितलियाँ देखीं। हम बहुत थक गए थे।

दोपहर में हमने खाना खाया। और आखिरकार फिर हम शिकार करने की जगह पर पहुँचे। वहाँ हमने खरगोश के बिल देखे। हमने कई सारे बिल ढूँढ लिए। उनकी पूरी कॉलोनी थी वहाँ। उसके आसपास कई सारे छेद थे। हमने पास के पेड़ों से कई सारी सूखी टहनियाँ इकट्ठी करीं। फिर हमने उन्हें बिल के पास "वी" के आकार में जमाया। हमने थोड़ी सूखी घास इकट्ठा की और उसमें आग लगा दी। उसका धुआँ सब बिल में जाने लगा। वहाँ आग की लपटें भी थीं और धुआँ भी। खरगोश बिल से निकलकर बाहर आने लगे। हमने उन्हें पकड़ लिया। उस दिन हमने दो खरगोश पकड़े। फिर हमने वहाँ जंगल में ही उनका पकाया। खाया और मज़े किए। लेकिन मुझे खरगोश का माँस अच्छा नहीं लगा।

– वैभव बेलदार, दसवीं,
प्रगत शिक्षण संस्थान फलटण,
महाराष्ट्र

– कुलदीप, पाँचवीं, बड़गई, हिमाचल प्रदेश

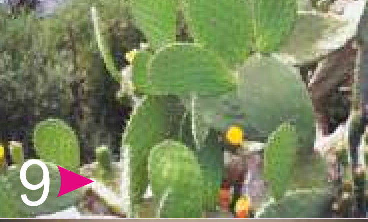
9 ►

20 ►

1 ▼

8 ►

19 ▼
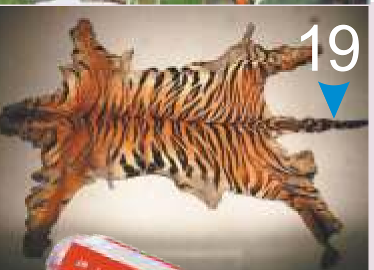

20 ▼

14 ▼

13 ►

चित्र पहेली

► बाएँ से दाएँ
▼ ऊपर से नीचे

15 ▼

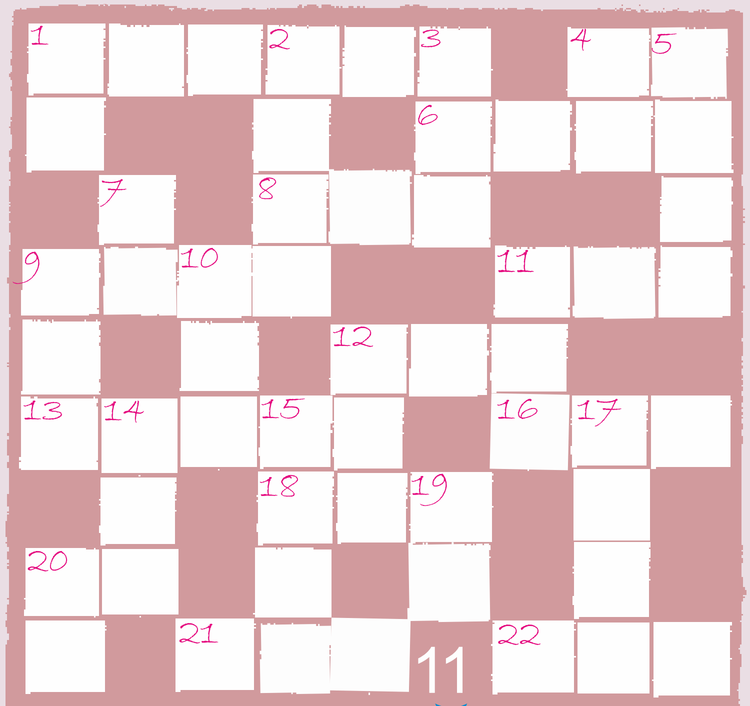

3 ▼

1 ►

17 ▼
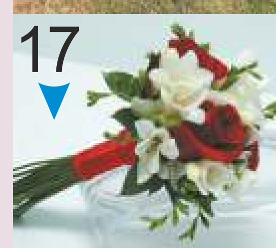

10 ▼

2 ▼

11 ▼
1000000000

6 ►

16 ►

5 ▼

4 ▼
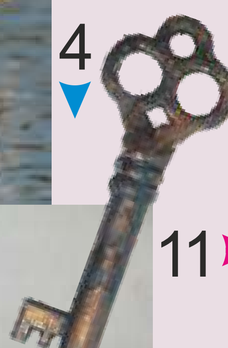

22 ►
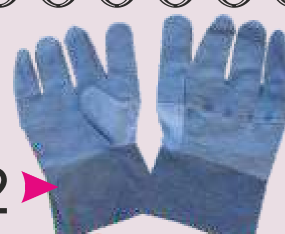

12 ▼

18 ►

11 ►

9 ▼

12 ►

7 ▼

21 ►

4 ►

ये धरती कितनी सुंदर है ना...

रस्किन बॉण्ड

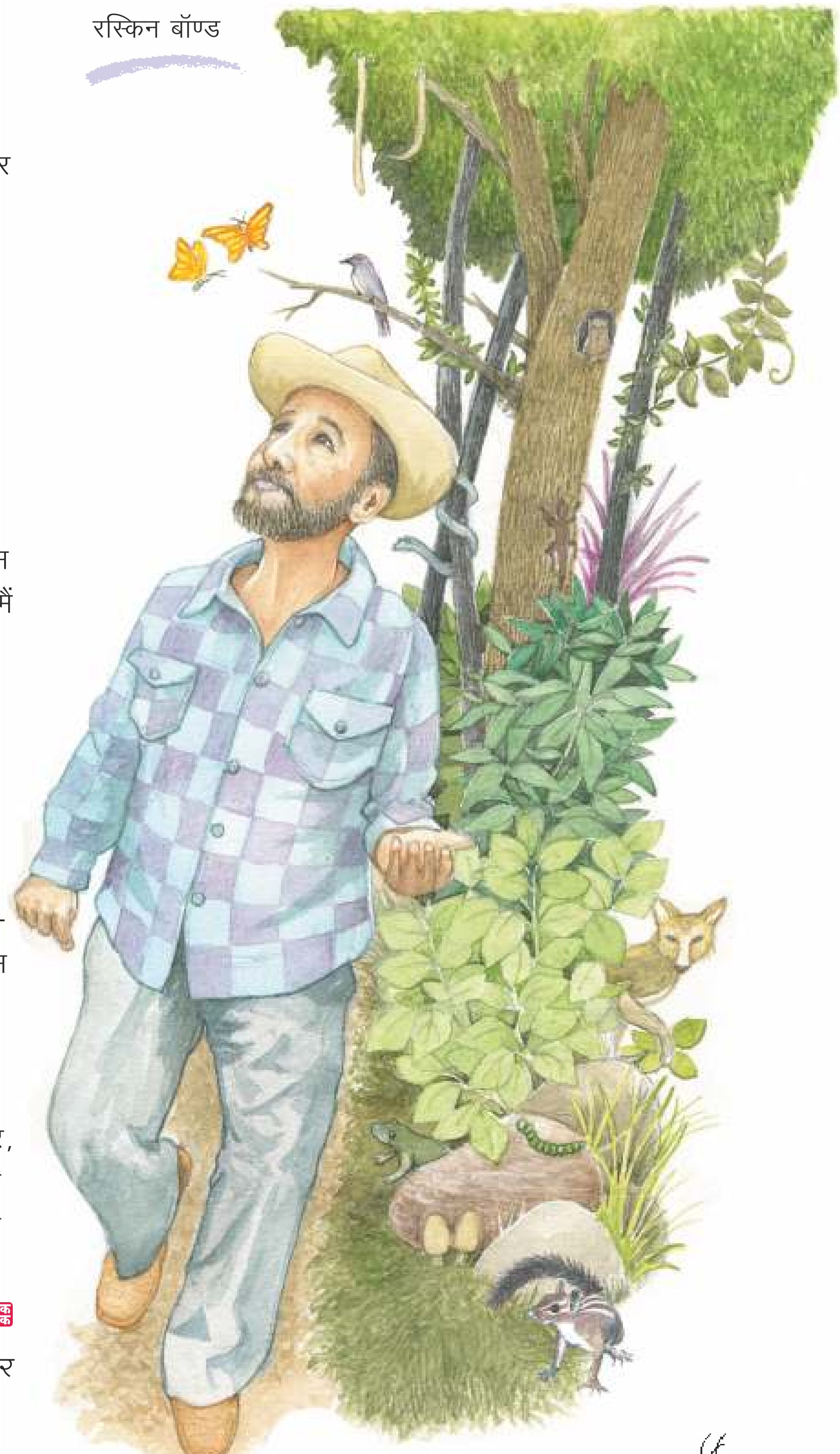

मैं बहुत मिलनसार नहीं हूँ। इसका मतलब यह नहीं कि मैं लोगों से दूर रहता हूँ। मुझे लोगों से बात करना, उनसे दोस्ती करना अच्छा लगता है। और अकसर एकदम अजनबी लोगों से दोस्ती करने में मुझे वक्त नहीं लगता। पर मुझे मेरा अकेलेपन भी बहुत पसन्द है। अकेले में हम अच्छी तरह से सोच पाते हैं। मैं ज़्यादातर अकेला ही घूमता हूँ। मुझे अकेले घूमना अच्छा भी बहुत लगता है। सोचो, अगर मैं किसी के साथ बातें करता हुआ चल रहा होता (चाहे कितनी ही दिलचस्प बात पर) तब हो सकता है जंगली गुलाब पर बैठी उस रंगीली बीरबहूटी पर मेरी नज़र टिकती ही नहीं। ऐसा नहीं है कि इस बीरबहूटी को देख लेने से मेरी ज़िन्दगी में कोई बड़ी भारी तबदीली होने वाली है। पर उसे देखकर मुझे बेहद खुशी मिलती है। बीरबहूटी इसी दुनिया में है जिसमें मैं हूँ, मैं इस बात की खुशी मनाता हूँ और रुककर उसकी खूबसूरती के सदके जाता हूँ। मैं इस कुदरती ताने-बाने के आगे सिर झुकाता हूँ जिसका मैं एक अदना-सा हिस्सा हूँ।

कुदरत की ऐसी खूबसूरती से कोई कितनी गहराई से जुड़ा है इसी से उसकी अन्दरूनी खूबसूरती की झलक देखी जा सकती है। इस दुनिया में हमें सब तरह के लोग मिलेंगे – स्वार्थ से भरे और तंग दिल भी। और जैसे-जैसे हम खुद को ज़िन्दा रखने की जद्दोजहद में भिड़ते जाएँगे, बड़ी-बड़ी बातें, बड़े-बड़े सपने धुँधले-से पड़ते लगेंगे। उस वक्त हमें बीरबहूटी की ज़रूरत महसूस होगी। इस छोटे से जीव या फिर वो फूल जिस पर वो बैठी थी, की याद आते ही हममें एक उम्मीद जगेगी – और एक यकीन पाँव पसारेगा कि यह जीवन पैसे, बाज़ार, मुनाफे, मोबाइल, टीवी, नित नई गाड़ियों, गैजेटों से कहीं बड़ा है। यहाँ सबके लिए जगह है – छोटे-बड़ों के लिए, तुम्हारे-हमारे लिए और फूल पर बैठी उस नन्ही बीरबहूटी के लिए भी... चक मक

- ए बुक ऑफ सिम्पल लिविंग से साभार

चित्र : दिलीप चिंचालकर

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17

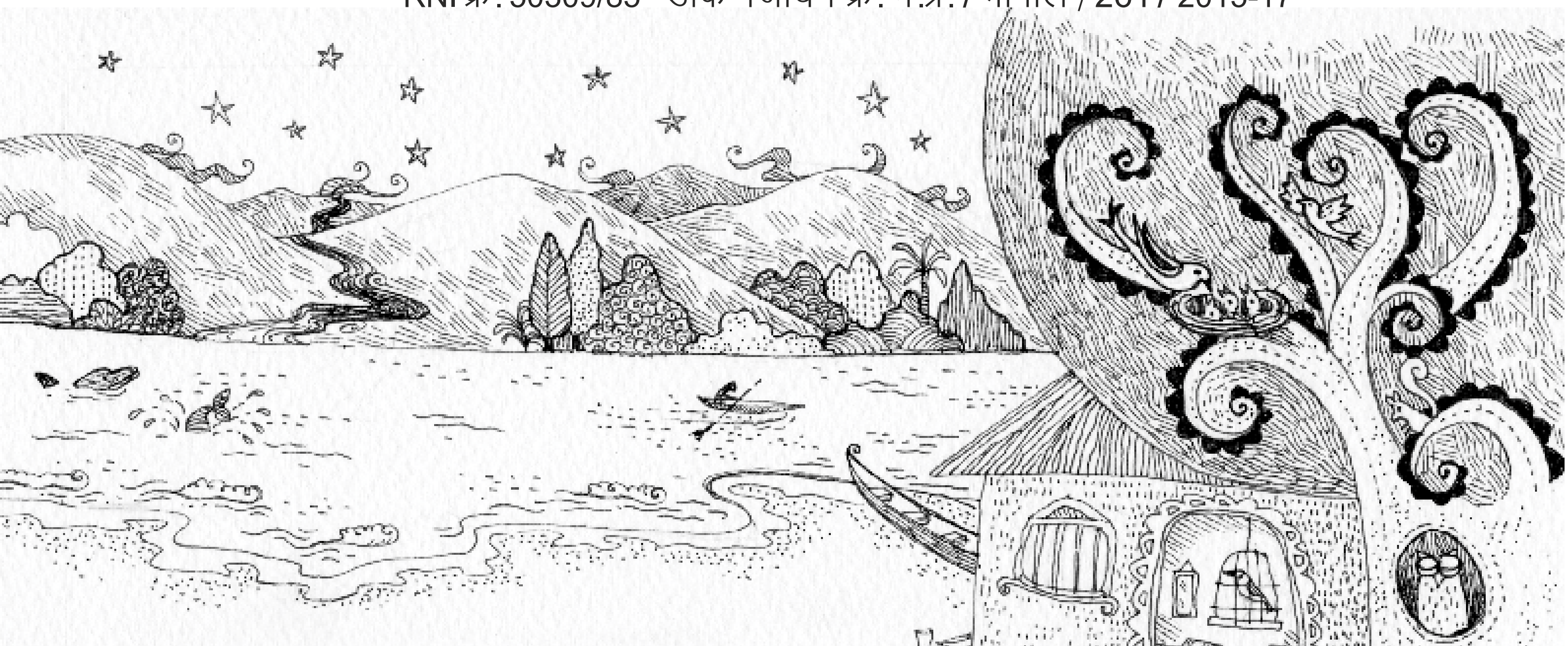

पालतू होना

आबादी के निकट के पेड़ पालतू हो जाते हैं जैसे घरों में आने से चिड़ियाँ। "बुज़ुर्ग पेड़ों पर चिड़ियों के गाने से, वे चिड़ियों के पालतू हो जाते हैं।" मैदान में बाँसुरी, अलगोज़ा बजाते चरवाहे प्रकृति को पालतू बना रहे होते हैं। आबादी के निकट से गुज़रती जंगली नदियाँ पालतू हो जाती हैं। उनके घाट उनका पालतू होना बताते हैं।

जो चीज़ें खाती नहीं नमक, पालतू नहीं। धरती अपना नमक खिलाकर सबको पालतू बनाती है। जैसे समुद्र का जीव-जगत उसका नमक खाकर पालतू है। हवा तक चाटकर उसका नमक, उसे उड़ाने में उसकी पालतू हो जाती है। लगातार देखने से एक तारा पालतू हो जाता है। इतना पालतू कि देखनेवाले के न होने पर भी रोज़ वहीं उगकर उसकी राह देखता है।

- अजीत चौधरी की कविता
"पालतू होना" का एक अंश।

चित्र - प्रोइती रॉय

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल